गलत

योगेन्द्र आहूजा

कभी किसी काम से आपको उस दुकान तक जाना पड़े, जहाँ बोर्ड लगा होता है, अलानी प्रापर्टीज़ या फलाने एसोसियेट्स का, मतलब किसी प्रॉपर्टी डीलर के पास, तो याद रखिएगा, वह झूठ का पुलिन्दा होता है, उसके भीतर सिर्फ झूठ भरा होता है, ढेरों झूठ। रजिस्टरों, फाइलों और दीवार पर चिपके मकानो और कालोनियों के चित्रों और नक्शों के बीच घूमती कुर्सी पर बैठा हुआ जब वह कहेगा कि फलानी जमीन, मकान या फ्लैट बस आखिरी बचा है, सिर्फ आपके लिए, यह झूठ होगा। वह उनकी जो कीमत या किराया बताएगा वह झूठ होगी। जब वह कहेगा कि उस मकान के मालिक माथुर साहब हमेशा के लिए विदेश जा रहे हैं, इसलिए औने-पौने में जल्दी-से-जल्दी उसे बेचना चाहते हैं, यह झूठ होगा, हो सकता है वह मकान माथुर साहब का हो ही न। जब वह आपसे कहेगा कि यह जमीन या मकान इससे सस्ते में मिल ही नहीं सकता और आप जल्दी फैसला कर लें, क्योंकि उसके लिए तीन और जने भी इच्छुक हैं, यह सफेद झूठ होगा। जब वह अपनी पत्नी को चिपकाकर उसके कानों में दिलरूबा, जानेमन जैसे प्यार-भरे शब्द कहता है, वे झूठ होते हैं, वह अपनी पत्नी से नफरत करता है, और कभी बहुत खुश होकर उन्मुक्त हँसी और आह्लाद-भरे स्वर में अपने बच्चों से जब वह कहता है, बोलो क्या चाहोगे, वह भी झूठ होता है, उस वक्त वह चाहता है कि वे दूर चले जाएँ उसकी आँखों के सामने से। जब वह कहता है कि फलाने काम से दिल्ली जा रहा हूँ, तब वह मुजफ्फरनगर जा रहा होता

है, या ज्यादा से ज्यादा मेरठ तक पहुँचकर उसे रूक जाना होता है। जब वह दाँतों में दर्द बताता है तब उसे सर्दी जुकाम, मुँह में छाले या पेट में मरोड़ या गुदगुदी, कुछ भी हो सकता है, या कुछ भी नहीं। जीवन-भर कही गयी उसकी हजारों-लाखों बातों में से कोई एक संयोगवश सच होती है, शेष सब झूठ होती हैं, या अनर्गल, कल्पनाप्रसूत और बेमतलब, इसमें इस धन्धे में आने से पहले की गयी बातों को छोड़ दिया जा सकता है। दोनों तरह से झूठ बोलता है। वह, जानते-बूझते, और वे, जो किसी न किसी तरह के अज्ञान से उपजते हैं, और वे तमाम गलत बातें भी, जो कई बार विद्वत्ता के आधिक्य का नतीजा होती हैं। उसे कभी रोता देखें तो दया दर्शाते हुए उसकी ओर न बढ़ जाएँ, वह अपने भीतर खिलखिलाकर हँसता हुआ दोहरा हो रहा होगा। अगर कभी वह बीमार पड़ा हो, और उसकी हाँफती, टूटती साँसों से संकेत मिले कि वह बस, जानेवाला है, तब भी डॉक्टर को बुलाने की कोई जरूरत नहीं, ठीक उस क्षण जब दम घुटने की आवाज आएगी और पास में खड़ी उसकी परेशान, पस्तहाल बीवी का विलाप फूट पड़ने को होगा, उसकी आँखों की पुतलियों में एक नामालूम हरकत होगी, फिर उसके होंठ हौले से हिलेंगे, एक डूबती, धीमी आवाज से वह कहेगा. .. पानी (शानदार ऐक्टिंग, एक भाववेगपूर्ण ड्रामा), फिर चन्द क्षणों में वह फुर्ती से उठ बैठेगा, और अपने कुत्ते को आवाज देगा।

इतनी नफरत से भरकर केशव उन दिनों तमाम प्रॉपर्टी डीलरों के बारे में ऐसा कहा करता था। सन् 80-81 के उन दिनों में इस शहर में जमीनों की कीमतें अचानक आकाश छूने लगी थीं और कुकुरमुत्तों की तरह हर सड़क पर, हर गली में प्रॉपर्टी डीलरों की दुकानें खुल गयी थीं। उसके बड़े भाई अपनी रजिस्ट्री ऑफिस की क्लर्की छोड़कर इस धन्धे में आ गये थे, और अपने बीवी बच्चों के साथ अलग रहने लगे थे, बाकी परिवार को उसके हाल पर छोड़कर। सालभर में उनके पास लाल रंग की मारूति आ गयी थी, और घर में न जाने क्या-क्या सामान। सर्वेश्वर उसकी बातें सुनकर कहता था कि यह सच है, मगर

एक बेपरदा, खुलेआम जाहिर सच, इसे इतना जोर से कहने की क्या जरूरत है।.... उन खुशनुमा मौकों को छोड़कर, जब वह एक तरह के सागरीय उल्लास में, स्वप्निल आवाज में लगातार बोलता जाता था, खून से उठती और खून तक उतरती बातें। आमतौर पर नहीं, और तब उसके बीमार चेहरे पर चिपकी उसकी रक्तमय आँखें बोलती थीं, मगर तब उसे समझ पाना, पढ़ पाना मुश्किल लगता था, जैसे कोई अज्ञात इबारत हो किसी प्राचीन भाषा में लिखी। कोने की चटाई पर वह लेटा रहता था, कमरे में होने वाली दूसरी बातों से बेखबर, और शिरीष शर्मा, जिसकी लेखक बनने की तमन्ना थी, उसकी तरफ इशारा कर कहता था, "श.....श...., दिवंगत आत्माओं से वार्तालाप में व्यस्त है वह, उसे मत छेड़ो।"

वह दुबला-पतला सूखा-लड़का था, जिसकी हड्डियों में बहुत कम फास्फोरस, मगर विचारों और सपनों का बहुत ज्यादा आवागमन था, और उसके रक्त में अत्यधिक उफान और असंयम। हाथों का तकिया बनाये वह लेटा रहता था और उसके भीतर, आदमी की अमरता के गान जैसा, बंजारनों का एक ढोल बजता रहता था, या कोई कविता, जिसमें शब्द बेशक मामूली, सबसे साधारण हों, मगर खूब रोशनी हो, चौंधिया देने वाली चमक, और जिसे पूरा पढ़ते हुए साँस रूकने लगे।... कोने में एक हीटर था जिस पर बार-बार चाय बनायी जाती थी। एक टूटी-सी चारपाई दूसरे कोने में। उस कमरे में वे सब पढ़ाई करने के बहाने से जुटते थे और बन्द दरवाजों के पीछे दुनिया जहान की बातें चलती रहती थीं - पत्तियों की सरसराहट की तरह चलनेवाली लड़कियों के बारे में, दुनिया भर के साहित्य में से छाँटी गयी उम्मीद जगाने और हसरत भड़काने वाली कविताएँ, और राजनीति और संस्कृति के बारे में, और बेस और सुपरस्ट्रक्चर के सम्बन्धों जैसे फिलॉसॉफिकल सवालों पर। तीखी चीखती आवाजों में बहसें होती थीं जिनका अन्त होता था कभी एक शोकातुर किस्म की खामोशी में जिसके बाद सब लोग आहिस्ता उतरते अँधेरे में धीमे-धीमे सिर झुकाये बाहर निकलते थे - कभी एक

बेरोक, उल्लसित रक्त-प्रवाह के साथ बारात जैसी दमकती रोशनी में जिसमें आपका मन चाहता है खूब शोर हो, चुप्पी को आईनों की तरह तोड़ देनेवाला कोई तेज रफ्तार संगीत, और थोड़ी-सी पी ली जाए। उसका घर कॉलेज के सबसे करीब पड़ता था और बाहर गली की तरफ खुलने वाला उसकी नीची, सीली छत और मटमैली दीवारों वाला कोठरीनुमा कमरा बैठकों और बहसों का एक स्थायी ठिकाना था। आते-आते वहाँ झाँक जाने का एक नियम-सा बन गया था। आदेश अवस्थी, जो अब बीमा एजेण्ड बन गया है, अलोक श्रीवास्तव डॉक्टर, एक बड़े नर्सिंग होम का मालिक, गुरविन्दर सिंह बैंक में कैशियर, शिरीष शर्मा जो उत्तर-आधुनिकतावादी लेखक है, पहले मार्क्सवादी था और जिसका विवाह अभी पिछले दिनों हुआ है, बाकी सब जनों में सबसे देरी से, और केशव, वह तो...., और शुक्ला और घोष, और तमाम दूसरे लोग जो उस जमाने में छात्र थे, वहाँ जुटते थे शाम से देर रात तक, उनमें से कोई कभी-कभी रात भर। वह पन्द्रह साल पुराना समय था, अब मन के सुनसान तलघर में कहीं उसकी काठ-कबाड़-सी स्मृतियाँ हैं, जिन्हें कभी-कभी सपने में हरकत करता, पसीजा हुआ हाथ छूता, टटोलता, फिर वैसे ही रख देता है- पुरानी एक तस्वीर, एक फ्रेम, एक शतरंज बोर्ड जिसके साथ कुछ टूटी-फूटी मुहरें, एक बेंत की कुर्सी जिसकी धज्जियाँ उड़ चुकीं, एक कभी की रूक चुकी दीवार घड़ी, और एक अपनी चिमनी की याद में सूख चुकी लालटेन का पिंजर, मगर वहीं कोने में पड़ी है एक वायलियन भी, जो वैसी ही बजती है, उतनी ही शानदार, केवल पहले से बहुत धीमी, मद्धिम आवाज में, जिसे सुनने को साँस रोकनी पड़ती है।

वह छोटी-छोटी ईंटों से कोई सौ साल पहले बना एक पुराना, जर्जर मकान था जिसमें दो मंजिले थीं और तैंसीस कमरों में दस या बारह किरायेदार। ऊपर की मंजिल में एक कतार में सीलन-भरे, खस्ताहाल फर्शवाले बरसाती जैसे कमरे थे जिनमें कबाड़ भरा रहता था, और सर्वदा एक गहन चुप्पी। नीचे की मंजिल में सर्वेश्वर के परिवार के अलावा दफ्तरों के बाबू, एक टैक्सी ड्राइवर, एक

मास्टर साहब, एक होम्योपैथी के डॉक्टर और एक अकेला आदमी रहता था जिसकी चाय की दुकान थी, और उसके कमरे पर हमेशा ताला लगा रहता था। वह पता नहीं कब आता और चला जाता था। हाँ, एक नाई की दुकान भी तो, एक ही कमरा जो उसका घर भी था, दुकान भी, उसमें आना-जाना पीछे की सड़क से होता था, वहाँ दीवार पर हीरोकट चेहरे थे और रेडियो हमेशा चीखता रहता था। और एक अकेले, अँधेरे कमरे में एक स्मगलर रहा था, मिचमिची आँखों और चौकन्ने चेहरेवाला एक अधेड़ आदमी जो बिल्ली की तरह दबे पाँव चलता था और बुलाने पर चौंककर देखता था- बीच-बीच में वह कई दिनों के लिए गायब हो जाता था, उन दिनों में वह जगलों मे गैर-कानूनी रूप से लकड़ियाँ कटवाता, लदवाता था, पुलिस और जंगलात के अफसरों को पटाता था, यही उसका धन्धा था और उसे स्कूल में पढ़ी महादेवी वर्मा, दिनकर और अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की बहुत सारी कविताएँ याद थीं। कभी-कभी वह इन लोगों को चाय पिलाने अपने कमरे में ले जाता था। उसका परिवार बहुत दूर मुजफ्फरनगर में रहता था, जहाँ वह बताता था कि उसके भाइयों ने उसकी बेशुमार सम्पत्ति हड़प कर रखी थी, जिसे वापस पाने की वह कोशिश कर रहा था, और वह उसे वापस मिलने ही वाली थी, बस अगले चन्द दिनों या महीनों में, उसके बाद तो जिंदगी भर ऐश होगी। वह कहता, 'तुम लोग भी साथ चलना, मौज करना।' फिर वह कुछ पैसे उधार माँगने की कोशिश करता था। केशव ने एक बार कहा कि उस स्मगलर के मुँह से कविताएँ सुनना, अजीब, अशुभ जैसा कुछ लगता है, किसी अनिष्ट का सूचक, और वह किसी दिन उसे गली में रोककर कहेगा कि वह उन सारी कविताओं को अपने दिमाग से पोंछ डाले, चुपचाप एक शरीफ आदमी की तरह कविताओं के विश्व से बाहर चला जाए - और वह ऐसा कर देता अगर उन्हीं दिनों कॉलेज में यह फुसफुसाहट न फैल जाती कि साहित्य पढ़ानेवाला एक प्रोफेसर अपनी बीवी को लात-जूतों से पीटते हैं।

...वह मकान किसी जमाने में किसी पुराने रईस या अँग्रेज की हवेली रहा होगा, और तमाम मालिकों के नाम दाखिल खारिज होते हुए अब सेना से रिटायर एक सूबेदार साहब के पास था, जिन्होंने तीन कमरे अपने पास रखकर बाकी को किराये पर चढ़ा दिया था, जिनमें से दो में उनका परिवार रहता था, और एक में थी एक प्रिंटिंग प्रेस जहाँ के फीके अँधेरे में एक कम्पोजीटर लोहे के अक्षर बीनता रहता था, और बीड़ी और स्याही की गन्ध भरी रहती थी। रोज सुबह और शाम हर किरायेदार के मकान के आगे अँगीठियाँ जलती थीं, कोयले की गन्ध और सफेद धुआँ आँगन में और हर कमरे में भर जाता था और होम्योपैथी का डॉक्टर चीखते-चिल्लाते बाहर आता था, और बकने-झकने के बाद अपना कमरा बन्द कर लेता था, क्योंकि उसकी दवाइयाँ धुएँ से खराब हो सकती थीं।

रात हो जाने पर वह मकान अन्धकार में एक जगमग जलयान जैसा लगता था- हर खिड़की पर रोशनी का एक चमचमाता चकत्ता होता था और तमाम तरह की आवाजों का शोरगुल उठता रहता था- बिगुल की तरह बजता रेडियो, उसकी उठती-गिरती आवाज, कोने से आती प्रिंटिंग प्रेस की लगातार खट-खट, किसी को चिल्लाकर बुलाता कोई, और बच्चों का रोना-चीखना। बाकी गली खामोश रहती थी, केवल तेज हवा में खिड़कियों के पर्दे साँय-साँय बाहर को लपकते थे। सर्वेश्वर का कमरा बन्द रहता था और भीतर बहुत तेज और जहीन दिमागों वाले ऊपर लिखे और बहुत सारे लोग फुसफुसाहटों में बातें करते थे - बेआवाज समय के भीतर जो पक रहा था उसके और बहुत दूर पर स्थित किसी सुनहरे सूर्योदय के बारे में, ताजा पढ़ी किताबों और मार्क्सवाद के बारे में, और शहर भर की वे लड़कियाँ, या वह कोई एक लड़की, जो इतनी खूबसूरत हो कि उसके लिए एक ही शब्द दिमाग में आए-नृशंस, जिसके बारे में जल्दी से बताना चाहता है यह लेखक कि वैसी एक, मगर केवल एक ही-लड़की हिन्दुस्तान की नगर और कस्बे में है, किसी अन्य समय में जीनेवाली, अपने साम्राज्य की मलिका-और वे स्त्रियाँ, जिनकी बदचलनी के किस्से फैलने लगे थे क्योंकि वे

आकाश गंगाओं तक जाना चाहती थीं, और.... और सर्वशक्तिमान के बारे में। हाँ, ईश्वर भी, और क्यों नहीं। बेअक्ल और बुद्धू लड़कों को छोड़कर उसके होने न होने के बारे में बीस-बाईस बरस की उम्र में हर व्यक्ति बहसें करता, करना चाहता है-सुबह से कुछ देर बाद की तीखी और अकलुष धूप जैसी उस उम्र में जब शरीर के गोपन भेद और महान किताबों के मतलब धीरे-धीरे खुलना शुरू होते हैं। तमाम प्रचलित धारणाओं की तरह यह झूठ है कि ईश्वर से मतलब केवल उन्हें होता है जिन्हें उम्र काफी थका या छका चुकती है, यानी बूढ़ों को-कभी चुपके से बीस बरस के लड़कों की बातें सुनिए। अधिक से अधिक पच्चीस बरस की आयु तक उसके बारे में किसी न किसी नतीजे पर पहुँच जाया जाता है - या तो माता-पिता और परम्परा से मिलने वाला वही बहुत पुराना, पुराकालीन, एण्टीकनुमा ईश्वर, विचारों को बहकने से रोकने वाला खानदानी कनटोप या फिर आज तक के मानवीय इतिहास में जीवन की क्रूरता के प्रतिवाद में जो रचे, सोचे गये, उन ऊष्णतम विचारों और शक्तिशाली शब्दों का एक दीर्घावधि तक रक्त में घुलते रहना, किसी एक रात अँधेरे में तीन बजे की नींद में कोई आवाज सुनकर उठ बैठना, और ईश्वर की बाधा को पार कर जाना। उस निःशब्द घुप अँधेरी रात में तुम देखते हो चारों तरफ, हृदय में एक भयग्रस्त उथल-पुथल होती है, मन काँपता है, तेज हवाओं में फँसकर जैसे कोई पौधा या पत्ती फड़फड़ाती है- मगर फिर कहीं से आता है एक चिरयुवा अनश्वर हाथ, कन्धों पर दोस्ताना तरीके से थपथपाता है। वह सब कुछ से विदाई लेने का क्षण होता है... निकल पड़ने का कम्पास और एटलस लेकर, झोले में कुछ किताबों के साथ, दुस्साहसी, विश्वव्यापी यात्राओं पर। ....मगर इसका सिर्फ इतना ही मतलब है, या होना चाहिए, कि तब ईश्वर अपने तमाम आध्यात्मिक और रहस्यमय अर्थों को तजकर मानवीय माने धारण करता है। वह जो अँधेरे में कहीं से आता है अचानक, उसका भी नाम खुदा होता है, कुछ और थोड़े ही-यूँ तो कोई फर्क नहीं पड़ता उसे कुछ नाम दे दिया जाए। यह याद रखना जरूरी है,

हमेशा, हमेशा, हमेशा... कि भरी दुपहरी लालटेन लेकर ईश्वर की मृत्यु की घोषणा जिस दार्शनिक ने की थी, बाद में उसकी किताबे फासीवादियों की पाठ्य पुस्तकें थीं-बेशक यह भुलाते हुए नहीं कि सारी दुनिया में फासीवादियो की सबसे ज्यादा, सबसे पहली कोशिश होती है कि खुदा उनकी तस्दीक करे, उनके समर्थन में हाथ खड़ा करे।... ईश्वर उसके बाद भी सपनों में आता है, इस बार भिखारी-सा चेहरा, लाठी पकड़े, चीथड़े पहने और काला-कलूटा। केवल उसकी गहरी आँखें नीली, पूर्व से पश्चिम तक। आप उससे कुछ कहना चाहते हैं, मगर एक अधटूटी हकलाहट में कुछ कहा नहीं जाता, और वह चला जाता है, और आपको बहुत शर्म आती है।

यह ईश्वर के बारे में इस नैरेटर के खयाल नहीं, सर्वेश्वर पुराण था जिसे वह कभी-कभी किसी गरमी की दोपहर में, जब सूर्य नीचे झुक आता था, और पृथ्वी की पपड़ी सुलगने लगती थी, कबाड़ी बाजार या लाइब्रेरी से लायी बहुत सारे ज्ञात-अज्ञात लेखकों, ज्ञानियों, विद्वानों की किताबों के बीच फर्श पर बैठकर सुनता था, जिसे सुनकर शिरीष शर्मा उसकी पीठ पीछे कहता था कि वह दरअसल 'डीपली रेलीजियस' है, और उस वक्त जबकि वह एक उदास चुप्पी में मार्क्सवाद बुदबुदाता है, उस वक्त भी उसके दिमाग में मेटाफिजिक्स होती है, और, कि इस आदमी का जीवन बीतेगा बस खूबसूरत शब्दों की खुसर-फुसर में, उनसे वह अपनी आजीविका भी कमा लेगा, मगर इससे ज्यादा कुछ नहीं। और खुदा न खास्ता वह लेखक, कवि या प्रोफेसर अध्यापक जैसा कुछ बन गया तो उसके पाठकों और छात्रों की आत्माएँ और मस्तिष्क हरदम लबालब रहा करेंगे, एक महान रचनात्मक शक्ति से भरे हुए - मगर उस वक्त जब वे तैयार होंगे इस देश और समाज में हर समय, हर घड़ी चल रही उस बहुत बड़ी लड़ाई में उतरने को, दिमाग में उसके शब्द और वाक्यांश दोहराते हुए, वह उस समय वैष्णोदेवी जानेवाली ट्रेन के बैठा होगा। शिरीष शर्मा ने सर्वेश्वर को इन बातों का जवाब देने का कभी मौका नहीं दिया, मगर केशव ने उसे एक बार दीवार के

पास रोककर साफ-साफ समझाया था कि ये टिप्पणियाँ ओछी और बेवकूफाना थीं, क्योंकि सर्वेश्वर की बातों से ऐसा कोई नतीजा नहीं निकलता, दूसरे, हर हाल में यह बेहतर है कि ईश्वर से शुरूआत में निबट लिया जाए क्योंकि शुरूआत में उससे कतराने का नतीजा होता है आखिर में उसी तक लौट आना, और फिर खुदा और खुदा में भी फर्क होता है। शिरीष अपनी खाली-खाली आँखों से उसे खामोश ताकता रहा था।

शिरीष शर्मा के बारे में थोड़ी तफसील से यह, कि वह इस मण्डली में अभी कुछ ही दिन हुए दाखिल हुआ था। उसका छोटा-सा गाँव पहाड़ों के पीछे कहीं था जहाँ इण्टमीडिएट की पढ़ाई करने के बाद आगे की पढ़ाई करने वह यहाँ आया था और बतौर पेइंग गेस्ट पी.डब्ल्यू.डी से रिटायर एक इंजीनियर साहब की बड़ी-सी शानदार कोठी के एक कमरे में रहता था। इन इंजीनियर साहब के पिता उसी के गाँव में किसी सुदूर जमाने में रोजी-रोटी की तलाश में यहाँ आये थे, उन्हें गुजरे हुए भी अब एक लम्बा अरसा हो चुका था। अपने गाँव का जब वह जिक्र करता था तो लगता था कि ग्रहों के शुभाशुभ कितने योग जुड़े हैं उससे मसलन वहाँ धीमे-धीमे हिलते पेड़ थे, पहाड़ी हवाओं में फँसकर जो यूँ फड़फड़ाते थे जैसे निर्बाध भागती एक अश्व-सेना.... उसके घर के सामने एक चुपचाप नदी बहती थी और उसमें सूर्य के परावर्तित होते सिन्दूरी रंग के प्रकाश में शिकारी कुत्तों की तरह एक-दूसरे का पीछा करती, मगर एक ही विराट रचना के अंशों की तरह विलक्षण रूपाकृतियाँ प्रकट होती थीं, उस नदी पर बने एक पुराने पुल पर चढ़ना ऐसा होता था जैसे किसी भग्न रोमन किले की कगार पर, और वहाँ से नीचे झाँकना ज्यों काल में ताकना, मतलब यह कि बेहिसाब अभिव्यक्तियाँ जीवन की-मगर कई बार कहने के बावजूद वह कभी किसी को अपने गाँव नहीं ले गया जिसकी वजह वही जानता होगा। वह किसी को कभी अपने कमरे पर भी नहीं ले गया, क्योंकि वह बताता था कि वह मैला-कुचैला कमरा है, और वहाँ चाय का भी कोई इन्तजाम नहीं है, हालाँकि सबको मालूम था कि उसकी चाय,

खाना, नाश्ता किराये में शामिल है, और उस जे.ई.की बेटी (उसका नाम भी मालूम था सबको, डॉली) जब उसके कमरे में नाश्ता लेकर आती है तो वह उसकी उँगलियाँ सहला देता है, और वह लड़की भी... और कोई आँख मारकर कह भी देता था, यार सबसे ज्यादा मजे तो तेरे ही हैं। यह लड़की मुहल्ले के एक हीरोनुमा लड़के के साथ अभिनेत्री बनने मुम्बई भागकर जा चुकी थी, और उनके पीछे-पीछे जे.ई.भी गया था और हफ्ता-भर उसे हर स्टूडियो में और समुद्र तटों पर तलाशता रहा था। आखिर वह फिल्मिस्तान स्टूडियो के बाहर उसी लड़के के साथ एक चाय की दुकान में चाय पीती मिली थी। वह उसे समझा-बुझाकर किसी तरह वापस लाया था, लड़का वहीं रह गया था।.... शिरीष शर्मा उन सबमें सबसे ज्यादा जहीन था, सबसे ज्यादा पढ़ता था, और उसके पास बहुत तेज, तर्कशील, विश्लेषणपरक दिमाग था, हालाँकि दूर की कौड़ी लाने और अलग दीखने की चाह में अकसर उसके तर्क बेहूदे होते थे, पिट जाने के बाद भी जिन्हें वह पीटता चला जाता था, मसलन, किसी ने एक बार कहा कि क्रान्ति के बाद सोवियत संघ से गोगोल की 'ओवरकोट' के मुकाबले की एक भी रचना नहीं आयी, अधिकतर जो लिखा गया वे ट्रैक्टरों और सामूहिक फार्मों पर लिखी कचरा कविताएँ थीं। सर्वेश्वर ने इसका जवाब दिया यह कहकर कि क्रान्ति के बाद शताब्दियों में पहली बार लाखों जनगण को जुबान मिली थी और यह स्वाभाविक था कि पहली कोशिश में उनकी रचनाएँ रद्दी हों, और किसी ने शोलोखोव, गोर्की, मायकोवस्की, पास्तरनाक और येस्येनिन का जिक्र करना चाहा, मगर शिरीष शर्मा, सुनिए, शिरीष शर्मा कहता है कि उन तमाम कूड़ा रचनाओं को क्रान्ति की सफलता के प्रमाण के रूप में देखा जाना चाहिए क्योंकि महान गौरवग्रन्थ वहीं रचे जाते हैं जो समाज पाप और पतन में डूबा होता है। इस पर केशव ने उसे इतनी जोर से चीखकर चुप कराया कि उसका चेहरा फक पड़ गया।

बहसें चलती रहती थीं, और बीच-बीच में सर्वेश्वर तमाम उत्सुक चेहरों

और तन्मय तकती आँखों के जमाव के बीच अपनी शान्त और अविचलित आवाज में कविताएँ, प्रेम से सराबोर कविताएँ होती थीं, अग्निशिखा-सी उन काल्पनिक कन्याओं को सम्बोधित, जिनकी आँखों में विषाद और कामनाएँ होती थीं। यह श्मशान में मन्त्रपाठ की तरह किन्हीं गुमसुम रहस्यों को टटोलना था, या दुरात्माओं को भगाने के लिए सहस्त्रनाम का पाठ। कविताओं में सबसे प्रिय लगता था 'प्रिय' शब्द, जब भी वह आता था हर्षनाद की एक हल्की गूँज-सी उठती थी और 'द्वन्द्ववाद' शब्द बातचीत में सबसे ज्यादा आता था। कविताओं की अति हो जाने पर घोष बीच-बीच में जरूर कह देता था कि यार किस चक्कर में पड़े हो, यह बताओ कि पढ़ाई पूरी होने के बाद धन्धे-पानी का क्या जुगाड़ होगा। यह घोष, जिसके पिता की लोहे के सामान और हार्डवेयर की एक छोटी-सी दुकान थी, कॉमर्स का छात्र था और शाम को लाइब्रेरी जाकर पूरे मनोयोग से फाइनेंशियल एक्सप्रेस जैसे अखबार और टाइम्स ऑफ इण्डिया का 'बिजनेस एण्ड इकॉनामी' पेज पढ़ा करता था, माथे पर गहरी लकीरें डालकर किसी जासूस की तरह टोह लेते हुए कि मुल्क की अर्थव्यवस्था किस तरफ जा रही थी और उसका अगला मुकाम कौन-सा था। वह अकसर रात के समय आता था और कमरे में बेआवाज प्रवेश करता था, दीवार पर उसकी वृहत्काय, काली छाया पड़ती रहती थी। कोने में खड़ा रहकर वह कहता था कि तुम लोग ब्रेख्त और प्लेखानोव के साथ क्या मगजमारी करते हो, जिसका कहीं से कोई जवाब न आने पर, देर तक खामोशी छायी रहने के बाद, वह अपने कुबड़े कन्धों और काली छाया को समेटकर चुपके से अँधेरे में चला जाता था।

बीच का जर्जर, झूलता दरवाजा हमेशा बन्द रहता था। उस दरवाजे में छेद और दरारें थीं, और ठीक उस समय, जब किसी मुश्किल-सी लगती कविता के मानी मुट्ठी में पकड़ने को ही होता था हाथ, पता नहीं किसका चेहरा झाँकता नजर आ जाता था, किसी बदसूरत डायन जैसा, चुड़ैल जैसा चेहरा... यह गरीबी के लिए लिखा जा रहा है - सबकी आँखों में घूरकर देखता था, इस तरह कि उनकी

हँसी उनके चेहरे पर ही जम जाए। सर्वेश्वर का विकलांग बाप दिन-भर धूप में एक तख्त पर लेटा रहता था और अपने बड़े बेटे और उसकी बीवी को माँ-बहन की बुरी-बुरी गालियाँ देता रहता था कि साले हरामी हैं, कामचोर, निकम्मे। उसके भाई का एक साल का बच्चा अपने घुटनों पर आँगन में इधर-उधर डोलता रहता था, जहाँ-तहाँ टट्टी कर देता था। भाई बेराजगार था, आस-पड़ोस में छोटे-मोटे काम करता था, जैसे शादियों में शामियाने, सजावट आदि का इन्तजाम और दो-चार सौ रूपये बना लेता था। बाप बिजली विभाग से रिटायर्ड था, लोग कहते थे कि वह बिजली के धक्के से एक टाँग खो बैठा था और फिर निकाल दिया गया था। एक बहन थी जिसकी उम्र उस समय बारह-चौदह साल थी। उसे बेहोशी के दौर पड़ते थे, जिसका इलाज करने को पड़ोस के उन डॉक्टर साहब की गोलियाँ बिल्कुल बेअसर साबित हो रही थीं। तब उसका चेहरा एकदम पीला पड़ जाता था। बहुत देर तक पानी के छींटे मारने के बाद वह होश में आती थी और पानी एकटक, थकन-भरी आँखों से आसपास जमा लोगों को ताकती थी। उन दिनों उसके भाई की पत्नी फिर पेट से थी और केवल पेटीकोट में आँगन में इधर-उधर चलती हुई वह बहुत भद्दी नजर आती थी।

पन्द्रह साल पुराने वे सभी दिन एक जैसे थे इसलिए कभी-कभी लगता था जैसे समय एक जगह ठहर गया हो, मगर वह लगातार बीतता जा रहा था, वैसे ही जैसे सिनेमा में प्रोजेक्टर के पहिये अपनी उसी रफ्तार से चलते जाते हैं, उस समय भी जब पर्दे पर कोई जमा हुआ फ्रीज शॉट दर्शाया जा रहा हो। लेकिन भीतर के गहरों में कहीं इच्छाओं की हलचल शुरू हो चुकी थी, जिन्हें बढ़ते जाना था अब एक जल्दबाजी और उतावलेपन के साथ। सर्वेश्वर के अलावा सब लोग किसी रोमांच के घटित होने की प्रतीक्षा में थे। वे नाटकीय और आश्चर्य-भरी घटनाओं के जमावड़े और शोरगुल के बीच एक रोमांच से दूसरे तक दौड़ते हुए जाना चाहते थे, इन्तजार था बस, कि परवरदिगार आए, सीटी बजाए। शिरीष शर्मा चाहता था अपने प्रथम संकलन का प्रकाशन। घोष का तय था कि बी.कॉम.

के बाद अपने पिता की दुकान पर बैठेगा। आलोक श्रीवास्तव सी.पी.एम.टी. में सफल होने के बाद डॉक्टरी पढ़ने किसी दूसरे शहर चला गया था। कुछ लोग प्रतियोगी परीक्षाओं की तैयारी कर रहे थे। आदेश अवस्थी की जेब से एक बार बीड़ी निकालने के साथ गिरा था बम्पर प्राइज वाला कोई लॉटरी का टिकट। उन्हीं दिनों एक दुर्घटना हुई थी। केशव के बड़े भाई अपने अनाड़ीपन में अपनी लाल मारूति को पहाड़ों में बहुत ऊँचाई पर ले गये थे जहाँ सड़कें हिमपात से भीगी, शीशे की तरह चिकनी थीं। कार सैकड़ों फीट नीचे पहाड़ की तली में जा गिरी थी, और उतनी ऊँचाई से नजर आने लगा था खून का एक छोटा-सा छींटा। उसमें से लाश निकालने के लिए अगले दिन और तेज धूप का इन्तजार करना पड़ा था। रोने-धोने का दौर समाप्त होने के बाद केशव की भाभी ने थकान लदे चेहरे और थमे हुए आँसुओं के साथ उससे विनती की थी कि वह मकानों-जमीनों के अधूरे छूट गये सौदों को पूरा कर दे जिनमें उनका अपना भी काफी पैसा फँसा हुआ था, इसमें अपना कमीशन वह जितना चाहे खुद तय कर ले, मगर अचानक टूट पड़ी उस विपदा में वह उनकी मदद न करेगा तो वे लोग.....।

सर्वेश्वर सब लोगों के बीच से, चलती बहस के बीच, एक दिन बुलबुले की तरह गायब हो गया। उसे पूरब के एक सीमान्त जिले के किसी दूरदराज गाँव में स्कूल मास्टर की मामूली-सी नौकरी मिली थी, वह बाकी सबको बिना बताये, बिना किसी से मिले, चुपके से वहाँ चला गया था। उसके बाद वह कभी लौटकर नहीं आया, अपने घरवालों से मिलने भी नहीं। अपने घरवालों को वह शुरू के दो-तीन साल दो-चार सौ रूपये भेजता रहता था, फिर वह नौकरी पता नहीं किन कारणों से उससे छिन गयी, मगर उसके बाद भी वह वापस नहीं आया। बस आधी-अधूरी खबरें आती थीं जिन्हें अन्दाजों से पूरा करना होता था। कई सालों के बाद सुना गया कि उसने वहीं पर विवाह भी कर लिया था, फिर यह कि वह बेहद तंगी में था, मतलब यह कि एक जकड़दार जीवन के बीच-मगर

शायद हताश या परेशान नहीं, इसलिए कि वह जहाँ भी था, अपने जैसे बहुत सारे साथियों के बीच था। वे कुछ राजनीतिक, विचारात्मक काम करते थे-नुक्कड़ नाटक, सभाएँ, गोष्ठियाँ, छात्रों और दिहाड़ी पर खटने वालों के बीच कुछ काम, एक छोटे से अनियतकालीन अखबार का प्रकाशन भी-वह और उसकी पत्नी दोनों, और उनके बहुत सारे संगी-साथी। उनके पास फुरसत कहाँ थी। इस शहर से उसका नाता पूरी तरह टूटा चुका था। कभी वहाँ से छपनेवाली पत्रिका में उसका कोई लेख, उसके बारे में कोई समाचार देखने को मिल जाता था। प्रकाश और छाया के बीच की दरारों में से साल गुजरते गये, निःशब्द बेहवा दुपहरियाँ और कालिख-भरी रातें। इस बीच यहाँ पर उसका वह सौ साल पुराना मकान गिर गया था- बीच में इस इलाके में जो एक बड़ा भूकम्प आया था, जिसमें व्यापक विनाश हुआ था और उसकी खबरें अखबारों में छायी रही थीं - उसमें वह एक मलबे के ढेर में बदल गया था। सर्वेश्वर उस समय भी नही आ पाया था, हाँ उसने अपने एक साथी को जरूर भेजा था जो कुछ दिन उसके घरवालों के साथ रहा था। मकान के मलबे में फँसकर बहुत सारे लोग घायल हुए थे। होम्यापैथी के डॉक्टर छत के एक बड़े टुकड़े की चोट से दवा की बारीक सफेद गोलियों और अल्कोहल की गन्ध के बीच मारे गये थे। वह स्मगलर भी घायल हुआ था और मरहम-पट्टी के बाद सीधे मुजफ्फरनगर वापस चला गया था। सर्वेश्वर का बाप भी घायल हुआ था क्योंकि वह बैसाखी समेत जल्दी से बाहर नहीं भाग पाया था। वह दस-पन्द्रह दिन अस्पताल में रहा था। फिर वे बाद में किसी दूसरे मुहल्ले में किसी और मकान में किराये पर रहने लगे थे। मकान के मालिक सूबेदार साहब को एक खरोंच भी नहीं आयी थी, न उसके घरवालों में से किसी को-और उसे यह फायदा हुआ था कि बरसों से जमे हुए किरायेदार रातोंरात मकान खाली कर गये थे और अब वहाँ कुछ भी बनवाया जा सकता था, कोई मार्केटिंग काम्पलेक्स या अठमंजिला इमारत। पन्द्रह साल के बाद आदेश अवस्थी के पास सर्वेश्वर की एक उत्तेजित, भड़कते हुए आवेगों से भरी चिट्ठी आयी थी जिसमें उसने लिखा था कि इस जगह से एक लम्बी अनुपस्थिति ने उसे

किस कदर व्याकुल कर दिया था, और वह चन्द दिनों के लिए घर आ रहा था। उसकी बहन की शादी थी। उसके जाने और आने के बीच जो समय बीत गया था वह पन्द्रह साल का एक बेहद, बेहद लम्बा वक्फा था, मगर दूसरी तरह से देखा जाए तो, बस थोड़ी ही देर तो।

उस दिन सुबह से बारिश हो रही थी। अवस्थी ने एक बेचैन, ऐंठी हुई नींद के बीच अपनी आँखें खोलीं, और कमरे के सूनेपन में उसके दिमाग की परतें फाड़ते, जैसे भागकर चले आये बहुत सारे डरावने शब्द और विचार। वे रात-भर कुत्ते की तरह उसके सिरहाने बैठे रहते थे... सुबह बढ़ाते थे अपनी लारदार जुबान और दोस्ताना पंजा। वह बीमा एजेण्ड था, और उसका काम इन्हीं शब्दों से चलता था जैसे दर्जी का कैंची से चलता है और नाई का उस चमड़े की पट्टी से जिस पर रगड़कर वह अपना उस्तरा चमकाता है। वह दिन-भर शहर के घरों, दुकानों, दफ्तरों में लोगों से मिलता, उन्हें एक हॉरर कथा सुनाता घूमता था कि मौत दबे पाँव उसके पीछे चल रही थी, कभी भी, कहीं भी झपट्टा मारने को तैयार, और वे मर गये तो उनके बाल-बच्चे... इस कहानी को वह अधिक से अधिक डरावनी बनाता था, और होता यह था कि जब वह यह कहानी सुनता था तो खुद सुनता भी था, और इसकी वजह से उसके भीतर व्याप गया था एक खिंचा हुआ सन्नाटा और काई की तरह जमी रहनेवाली घिग्घी। वह हर दूसरे-चौथे महीने अपने नाम से एक नयी पॉलिसी लेता था, खुद अपना सबसे बड़ा कस्टमर था वह और उसका लगभग सारा वेतन बीमे की किश्तों में चला जाता था। वह उठकर धीरे-धीरे सुबह के काम निपटाने लगा। वह बारिश रूकने की राह देख रहा था और सोच रहा था कि दफ्तर जाए या नहीं, कि हाथ में छाता पकड़े वह ठेकेदार आया था जो उसका मकान बनवा रहा था। वह तीन-चार तरह की टाइलें उससे पसन्द करवाने लाया था जो उसके बाथरूम में लगनी थीं। तभी पड़ोस की एक बच्ची एक गीली चिट्ठी गेट के पास फेंक गयी, यह कहकर कि पिछले दिन डाकिया गलती से उनके घर दे गया था। बारिश में

जाकर उसने वह चिट्ठी उठायी और भागते हुए वापस आया। वह काफी देर तक उसकी हैण्डराइटिंग पहचानने की कोशिश करता रहा। एक साँस में चिट्ठी पढ़ डालने के बाद ठेकेदार से उसने कहा कि वह सब उठाकर ले जाए। यह सब बाद में देखा जाएगा।

"चिट्ठी में कोई ऐसी-वैसी खबर है?" ठेकेदार ने जाते-जाते पूछा।

"नहीं, ऐसी कोई बात नहीं, सब ठीक है। अभी आप चलें।" उसने कहा।

उसके घर में बड़े-बड़े बालों और बार्बी डॉल जैसे चेहरे वाली एक गोरी चिट्टी औरत, उसकी बीवी जो एक बड़े शहर और अमीर बाप की लड़की थी, खिड़की के पास मूढ़े पर बैठकर बाहर को देख रही थी, झमाझम बारिश। उसके पास तिपाई पर टेलीफोन था। अवस्थी ने डॉ आलोक श्रीवास्तव को फोन मिलाया जो उस वक्त शहर के दूसरे किनारे पर अपने क्लीनिक में एक काफी मांसल मरीज औरत से झींक रहा था। वह मोटी औरत बदमिजाज और चिड़चिड़ी भी थी और कह रही थी कि वह उससे छह महीने से इलाज करवा रही थी, अभी तक उसके हाथ-पैरों की झनझनाहट ठीक क्यों नहीं हुई, और उसके खून से लबालब भरे सीने में खाली-खाली-सा क्यों लगता है, मगर मुँहलगी थी क्योंकि डॉक्टर के एक परिचित की बीवी थी। "कौन?" डॉक्टर ने फोन में कहा। अवस्थी ने कहा, "मैं अवस्थी।" "कौन अवस्थी?" डॉक्टर ने फिर कहा।

"अवस्थी को छोड़ो पहले मेरी बात का जवाब दो।" मोटी मरीज औरत ने बीच में कहा, बेतमीज जो थी, और बेसब्र। "मैं आदेश अवस्थी। मेरी आवाज नहीं पहचानी?" "बारिश की वजह से आवाज साफ नहीं आ रही।" "सर्वेश्वर आ रहा है। शायद कल या परसों, उसकी बहन की शादी है।" "कौन सर्वेश्वर?" यह उसकी बीवी थी जो टेलीफोन पर कान लगाये हुए थी। "कौन सर्वेश्वर?" डॉक्टर ने पूछा। "अब यह भी बताना होगा? सर्वेश्वर...." अवस्थी ने कहा। "कौन सर्वेश्वर?" बीवी ने फिर कहा, वह उससे टेलीफोन छीन लेना चाहती थी, मगर

वह उसे एक हाथ से किसी तरह रोकते हुए जल्दी-जल्दी बात करता रहा। उधर उस मोटी मरीज औरत ने फिर बीच में कुछ कहना चाहा। डॉक्टर ने फोन पर हाथ रखकर उसे झिड़कते हुए कहा, "चुप बैठिए थोड़ी देर।" "कौन है यह सर्वेश्वर?" बीवी ने फिर एक चीखती आवाज में कहा। अवस्थी अपने को न रोक सका, उसने एक हाथ से उसे पीछे धकेलते हुए झुँझलाकर कहा कि यार जरा चुप रहो, बात करने दोगी?

बीच में दो झगड़ालू और कटखनी औरतों की चिल्ल-पों से परे उसने किसी तरह यह खबर दूसरी तरफ पहुँचायी कि सर्वेश्वर दो-एक दिनों में आ रहा है। जब उसने टेलीफोन रखा तो उसकी बीवी बिल्ली की तरह उस पर झपटी और पास के दीवान पर उसे गिरा दिया। "कौन है यह सर्वेश्वर, कब आ रहा है, कहाँ से आ रहा है, मुझे सारी बात मालूम होनी चाहिए।" उसने कहा। इसके पीछे की कहानी दरअसल यह थी कि उसके दोस्तों में काफी आवारा, शराबी और लेखकनुमा लोग थे। शादी के बाद वह एक साल तक सब कुछ खामोशी से देखती रही थी, और फिर उसे कहना शुरू कर दिया था कि वह यहाँ से ट्रांसफर कराए, और उसके दोस्तों में से किसी के आने पर वह उनके मुँह पर दरवाजा बन्द कर देती थी। यही नहीं उसने मुहल्ले के दो-चार लड़के भी तैयार कर लिये थे कि वे कहीं आसपास नजर आएँ तो उन्हें छिपकर कंकड मारे जाएँ तो वह उन्हें इनाम देगी। अब कोई नहीं आता था। उसने कहा, "तुम्हारे सारे फालतू-नाकारा दोस्तों को मुश्किल से भगाया है। अब दुबारा वहीं चक्कर शुरू हुआ तो मुझे भाग जाना होगा।" वह इस बात पर भी नाराज थी कि वह इस शहर में मकान बनवा रहा था, कहीं और क्यों नहीं, जहाँ लेखकों-कलाकारों का कोई चक्कर न हो। उधर वह मोटी औरत मिट्टी के ढूह की तरह अब बिल्कुल खामोश बैठी थी। डॉक्टर ने उससे कहा कि आप भीतर जाकर दवा ले लें। फिर उसने घण्टी बजाकर अटैण्डेण्ट को बुलाया और कहा कि मैं आधे घण्टे के लिए जा रहा हूँ। मरीजों को रोके

रखो। वह अपने घर गया जो क्लीनिक से जुड़ा हुआ था, और बेडरूम में जाकर बड़े-से बिस्तर पर खामोशी से लेट गया, ताबूत में लेटने की तरह, उसकी इच्छा शीशे में अपना चेहरा देखने हुई, आँखों के नीचे की लकीरों से अन्दाजा लगाने की कि वह कौन-सा समय था, और कितनी उम्र बीत चुकी थी, कितनी बाकी बची थी।

अवस्थी की बीवी खराब मूड में बिस्तर पर औंधी लेटी हुई थी। वह स्टेट बैंक ऑफ पटियाला में गुरविन्दर को फोन मिला रहा था, जो उस समय इतने सारे रूपयों के बीच था कि उन्हें एक के ऊपर एक लगाया जो छत को फोड़ती वह मीनार काफी ऊँचाई तक जाती। फोन पाकर उसने कहा, "सर्वेश्वर! इतने सालों के बाद? कब आ रहा है?"

"कल या परसों ही। चिट्ठी कुछ लेट मिली है।"

"अच्छा? इतने सालों के बाद उससे मिलना पता नहीं कैसा लगेगा। उसने तारीख नहीं लिखी?"

"उसकी बहन की शादी छह तारीख को है, परसों। उस दिन तो वह यहाँ होगा ही। उसके एकाध दिन के बाद हम लोग, सब पुराने दोस्त, कहीं पर मिलेंगे। एक लम्बी बैठक होगी, रात-भर। ठीक है न! बस यही सूचना देनी थी।"

"बाकी सब लोगों को बता दिया है?"

"मैं कोशिश कर रहा हूँ, फोन पर! हाँ, शिरीष को तुम बता देना, उसके पास टेलीफोन नहीं है। उसका घर तुम्हारे घर के नजदीक ही है।"

फोन में केवल गूँ....गूँ की गूँजती आवाज थी। सींखचों वाली खिड़की के पार कुछ डबडबायी आँखें उसे ताक रही थीं। उसने खिड़की बन्द कर दी और मैनेजर के नाम आधी छुट्टी की दरखास्त लिखी। परेशान चेहरे और अपलक आँखों वाला मैनेजर अपने केबिन से उसके पास आया और पूछा, "क्या बात है? अचानक छुट्टी किसलिए?"

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मुझे सिर में चक्कर आ रहा है। कोई आदमी यहाँ लगाइए जो सारे रूपये गिन ले।"

खिड़की के परे धक्का-मुक्की शुरू हो गयी थी। मैनेजर ने हताश भाव से भीड़ की तरफ देखा और उससे कहा कि वह खिड़की पर खड़े लोगों को निपटाए, वह कोई इन्तजाम करता है। थोड़ी देर के बाद एक अन्य व्यक्ति आया और तेजी से उँगलियाँ चलाते हुए नोट गिनने लगा। वह चुपचाप बैंक के बाहर चला आया। बाहर अब बारौनक आसमान था जहाँ बवण्डर बादलों को धक्का मारकर छितरा रहा था और सूर्य की पतली तप्त किरणें झाँकने लगी थीं। बरसात अब बिल्कुल रुक चुकी थीं उसने एक टैम्पो पकड़ा और सवारियों के बीच फँसा हुआ, वाहन की थरथराहट के साथ काँपते हुए, थोड़ी ही देर में अपने घर पहुँच गया। यह तीन कमरों का छोटा-सा मकान शहर के बिल्कुल बीच एक कालोनी में था, जहाँ उसका परिवार रहता था - माँ पिता, पत्नी और दो बच्चे।

"आज इतनी जल्दी कैसे?" उसकी पत्नी ने उसे देखकर पूछा।

"कुछ नहीं, तबीयत खराब थी, छुट्टी लेकर आ गया।"

"कुछ नहीं, कोई ऐसी चिन्ता की बात नहीं है। मैं थोड़ी देर भीतर जाकर लेटता हूँ। बच्चों से कह देना, शोर न करें। दोपहर के बाद शायद घोष आएगा, तब मुझे उठा देना।"

वह भीतर के कमरे में जाकर लेट गया, शवासन की मुद्रा में। वह एक घण्टे तक सोता रहा, एक स्वप्न देखता रहा। उस स्वप्न में भी वह उसी मुद्रा में लेटा हुआ था जिसमें सचमुच और उस स्वप्न में उसे नींद नहीं आ रही थी। वह बेनींद सपना उसकी नींद के भीतर इस तरह घुस रहा था, जैसे खंजर म्यान में सरकता है, खटाखट... बहुत देर के बाद जब वह उठकर बैठा तो उसने जाना कि वह सोया नहीं था, एक पल के लिए भी।

घोष के घर में उस वक्त तेज आवाज में टेलीफोन बज़ा था, जिसमें वहाँ

से दो-तीन घण्टे की दूरी पर एक दूसरे शहर से बदहवास आवाज में यह सूचना थी कि वहाँ रहनेवाली उसकी बहन उस दिन सुबह छत पर कपड़े फैलाते हुए सीढ़ियों पर फिसलकर लुढ़कते हुए नीचे आ गिरी थी और खून में सने कपड़ों में तेजी से अस्पताल ले जायी गयी थी। दो-तीन घण्टे के ऑपरेशन के बाद वह बच गयी थी मगर अभी तक बेहोश थी, मगर उसके गर्भ का बच्चा मर चुका था। आप फौरन पहुँचने की कोशिश करें। घोष स्तब्ध, टेलीफोन को घूरता रह गया था, एक घुटी-सी चीख उसके गले से निकली थी। फिर वह भीतर के कमरे में लपका था जहाँ उसके पिता उस वक्त अपनी दोपहर की नींद ले रहे थे। वह चुपचाप उन्हें देखता रहा, एक विचित्र तरीके से स्याह पड़ गये उनके नाक-नक्श और मृतक की-सी निष्प्राण नींद। अभी दो महीने पहले ही तो उनकी माँ, हमेशा दुखियारी, खीजी हुई, परेशान रहनेवाली माँ-तब भी जब उनकी पुरानी, पुश्तैनी दुकान से कुछ खास निकलता न था और तंगी बनी रहती थी, और फिर उसने इतना सारा पैसा कमाकर दिखा दिया था, तब भी...हमेशा एक पीली, भूरी, मनहूस उदासी का एप्रन पहने रहनेवाली- उन्हें छोड़कर गयी थी। जब वह मरी थी केवल उस वक्त उसने उतारा था अपना वह जीवन-भर का लबादा, और उसकी लाश थी स्फटिक-सी सफेद। उसके जाने के बाद घर में मरघट जैसा सन्नाटा छाया रहता था और नींद में चलते आदमियों या अन्धों जैसी वीरान आँखों से वे एक-दूसरे को ताकते रहते थें। अचानक उसे कुछ याद आया और वह कपड़े बदलकर बाहर निकाला और चन्द ही क्षणों में सड़क पर चला आया। सड़कों पर गडढ़ों में बारिश का पानी जमा था, बीच में कहीं-कहीं सड़कें पूरी तरह पानी में डूबी हुई थीं। गुरविन्दर के घर तक पहुँचने में उसे काफी समय लग गया।

"कहाँ हैं सरदार जी?" उसने भीतर घुसते ही कहा।

"भीतर लेटे हैं। आप बैठो, मैं उन्हें बुलाती हूँ।" गुरविन्दर की पत्नी ने कहा।

गुरविन्दर सिंह भीतर के कमरे के दरवाजे पर नजर आया। वह बहुत थका और पीला लग रहा था। उसकी आँखों में अधूरी नींद थी।

"मैं इस समय बहुत जल्दी में हूँ। तू वह बैंक में खाता खुलवाने वाले फार्म लाया?"

"नहीं, मैं भूल गया।"

घोष हताश भाव से सोफे पर बैठ गया।

"भूल गया का क्या मतलब? आज तय नहीं हुआ था कि....। मैं केवल इसी काम के लिए तेजी से भागता आया हूँ, जबकि आज बहुत बुरी खबर आयी है। मेरी बहन का ऐक्सीडेण्ट हो गया है, वह हास्पिटल में बेहोश पड़ी है। अभी पिताजी के साथ वहाँ जाना है। अभी उन्हें बताया भी नहीं है।"

"क्यों, क्या हुआ? बहन बेहोश पड़ी है, और तूने घर में किसी को बताया नहीं, और तू खाता खुलवाने के लिए...."

"अभी टेलीफोन पर खबर आयी थी। मैंने सोचा पहले उनके दस्तखत करवा लूँ, फिर बताऊँ, लेकिन तू फार्म्स ही नहीं लाया।"

"क्यों? बताया क्यों नहीं?" गुरविन्दर ने गुस्से में कहा।

"यार, मदर के जाने के बाद उनकी किसी चीज में दिलचस्पी नहीं रह गयी है। अध्यात्म जोर मारने लगा है। हरिद्वार, ऋषिकेश में किसी आश्रम में जाकर रहने की बात करते हैं। अब यह खबर सुनकर सीधे बोरिया-बिस्तर उठाकर चल ही न दें, फिर....। अच्छा पार्टनरशिप डीड पर ही दस्तख्त हो जाएँ, मैं साथ लाया हूँ। तू भाभी को बुला...."

सरदारनी किचन में जाकर चाय बनाने लगी थी, बाहर की बातचीत पर कान लगाये हुए।

"नहीं, आज कोई दस्तखत नहीं होंगे। तुझे फौरन जाना चाहिए। आज नहीं..."

"लेकिन क्यों?"

"बस आज नहीं, फिर देखा जाएगा।"

"लेकिन आज क्यों नहीं?"

"आज तेजी बहन जिन्दगी और मौत के बीच है। ऐसे समय में यह सब नहीं, तुझे फौरन वहाँ जाना चाहिए।"

गुरविन्दर सिंह के पिता का एक छोटा-सा जमीन का टुकड़ा शहर से कोई दस-बारह कि.मी. की दूरी पर था। वह इलाका इण्डस्ट्रियल एस्टेट के रूप में विकसित किया जा रहा था। घोष ने उससे कहा था कि वह जमीन वह उसे बेच दे, जितना उसका दाम है, चाहे तो उससे दस-बीस हजार ज्यादा पर, मगर गुरविन्दर बहुत चालाक था (नहीं, वह नहीं, दरअसल उसकी बीवी जो एक खानदानी बिजनेस परिवार से थी और शादी के बाद से ही उसकी जान खाये जाती थी कि वह नौकरी छोड़कर कोई व्यापार करे और रातों में वे सेक्स के साथ एक-दूसरे के कानों में पैसे और व्यापार की बातें उच्चारा करते थे, फुसफुसाहटों में नींद आने तक, फिर वे साथ-साथ सपना देखते थे, एक ही सपना-एक के ऊपर एक रखी हुई नोटों की गड्डियों का) उसने कहा था कि वह उस जमीन को मुफ्त में अपने पास समझे, और बदले में वहाँ मिनरल वाटर की जो फैक्ट्री लगाने जा रहा था उसमें उसे 25 प्रतिशत का हिस्सेदार बनाए। घोष नहीं माना था, उसने कहा था, यार तू पचास हजार, एक लाख ज्यादा ले ले, मगर गुरविन्दर के कान में सरदारनी प्रेत की तरह पंजाबी में फुसफुसाती रहती थी, अड़े रहो, झुकना मत और आखिर में घोष को झुकना पड़ा था। गुरविन्दर सरकारी नौकरी में था और उधर घोष के साथ टैक्स का कोई लफड़ा था, इसलिए इस फैक्ट्री में घोष के पिता और गुरविन्दर की बीवी को पार्टनर बनाना था। कल रात गुरविन्दर की बीवी ने बच्चों की कॉपी में कैलकुलेटर से बहुत देर तक कोई हिसाब लगाया था, फिर परेशान होकर पीले, जर्द, पसीने से सराबोर

चेहरे के साथ उससे कहा था कि 40 प्रतिशत से कम के हिस्से पर राजी होना घाटे का सौदा है।

"बस अब जाऊँगा ही। इसमें पाँच मिनट लगेंगे। तू बुला तो भाभी को।" घोष ने कहा।

"नहीं, आज नहीं, कह दिया न। इस बारे में फिर बात करेंगे तसल्ली से।"

"बात क्या करनी है!"

"कल-परसों तक अगर तू लौट आया, तब तसल्ली से बैठेंगे। तभी दस्तखत हो जाएँगे। आज नहीं।"

घोष उसे खाली-खाली से देखता रहा। उसका चेहरा पसीने से लथपथ था, और साँसें फूली हुईं। फिर वह उठा और हताश, हौले कदमों से बाहर चला गया। इस समय तक अँधेरा पूरी तरह घिर चुका था। धीमी रफ्तार से सरकती हुई उसकी कार गली के मोड़ पर ओझल हो गयी। उसके जाने के बाद गुरविन्दर कुछ देर यूँ ही खाली बैठा रहा, कुछ सोचते हुए। फिर घड़ी पर उसकी निगाह गयी तो वह उठकर बाहर जाने के लिए कपड़े बदलने लगा। भीतर के कमरे से उसकी पत्नी आयी और उसे सवालिया आँखों से देखने लगी जिस पर उसने कहा कि वह अभी थोड़ी देर में लौट आएगा। उसने स्कूटर निकाला। थोड़ी ही देर में वह पड़ोस की एक कालोनी में एक बड़ी-सी कोठी में पहुँचा, जो इस वक्त अँधेरे में डूबी हुई थी। कोठी के बाहर के हिस्से में एक दुकान थी जो इस वक्त बन्द थी, केवल एक मद्धिम बल्ब की रोशनी में उसका बोर्ड चमक रहा था- डॉली ब्यूटी पार्लर। शिरीष शर्मा, उत्तर-आधुनिकतावादी लेखक, यहीं पिछवाड़े की तरफ किराये के कमरे में रहता था। गुरविन्दर ने बाहर से शिरीष के आवाज दी, जिसका कोई उत्तर न मिलने पर वह गेट खोलकर पीछे की तरह जाने लगा। उसी क्षण उसे लगा जैसे मकान के भीतर से कुछ लड़ाई-झगड़े की आवाजें आ रही हों, फिर वे सहसा रूक गयीं, मगर एक दबी हुई सिसकी, अँधेरे में कही से आती हुई, उसके साथ-साथ चलती रही। दाहिनी

तरफ से अचानक उसे एक आवाज सुनाई दी, "किससे मिलना है आपको?" उसने अँधेरे में आँखें गड़ाकर देखा, शिरीष का मकान मालिक, वह जे.ई. कुर्सी पर काली या कत्थई शॉल लपेटे बैठा हुआ था जैसे किसी का इन्तजार कर रहा हो। वह उठकर उसके पास चला आया। कहीं दूर से आती एक पतली प्रकाश किरण में वह बहुत बूढ़ा लग रहा था, और उसके कन्धे झुके हुए थे।

"शिरीष...." उसने कहा।

"वह तो शायद नहीं है।" बूढ़े ने एक हाँफती, परेशानी आवाज में कहा।

"कहाँ गया है?"

"पता नहीं।"

कुछ देर के लिए खामोशी छा गयी। एक खिंचता हुआ सन्नाटा।

"मैं थोड़ी देर इन्तजार कर लेता हूँ। शायद अभी आ जाए।"

शिरीष के कमरे के बाहर अँधेरा था, भीतर खिड़कियों के शीशों के पीछे से हल्की रोशनी नजर आ रही थी। उसने आवाज दी, शिरीष, लेकिन भीतर खामोशी रही। उसने दरवाजे को धक्का दिया और वह खुल गया। उसे मालूम था कि कहीं आसपास जाने पर शिरीष कमरे में ताला नहीं लगाता था। वहाँ उसका बिखरा हुआ बिस्तर था और कुर्सी-मेज, जमीन पर एक चटाई और बहुत सारी किताबें, पत्रिकाएँ वगैरह। कमरे में आदमियों की गन्ध भरी हुई थी, जैसे कोई अभी-अभी, जल्दी में कहीं उठकर गया हो। वहाँ एक और बन्द दरवाजा था, मकान मालिक के हिस्से में खुलनेवाला। वह बिस्तर पर बैठकर बहुत देर इन्तजार करता रहा, मगर उसके आने का कहीं से कोई संकेत न मिलने पर उसने एक कागज पर सर्वेश्वर के आने की सूचना लिखी और उसे पेपरवेट के नीचे दबाकर चुपचाप दबे कदमों से वापस चला आया। बाहर उसका मकान मालिक गेट के पास वैसे ही खड़ा था। उसने कहा, "शिरीष मिला?"

"नहीं, वह तो अपने कमरे में नहीं है।" उसने कहा।

बूढ़ा जैसे सन्तुष्ट हो गया। उसने कहा, "उससे कुछ कहना हो तो..."

"मैंने उसके लिए एक मैसेज उसकी मेज पर छोड़ दिया है।" गुरविन्दर ने कहा।

उसके जाने के एक मिनट के बाद शिरीष के कमरे का बीच का दरवाजा भड़ाक से खुला।

बेतरतीब बालों घबराये हुए चेहरे के साथ शिरीष, और उसके पीछे चमड़े की जैकिटों में बेरहम चेहरोंवाले दो आदमी बाहर आये। शिरीष के चेहरे का रक्त निचुड़ा हुआ था, वह कालिख पुता लग रहा था जैसे आदमी न हो, अँधेरे का एक टूटा टुकड़ा हो, और उसकी आँखों के सामने भी अँधेरा छा रहा था। अँधेरा फैलता-सा लग रहा था, जैसे किसी फूटे हुए बल्ब से फूटता है, इर्द-गिर्द, भीतर बाहर और सब तरफ। वह बिस्तर पर बैठ गया, और वे दोनों उसे घेरकर खड़े हो गये।

"क्या चाहते हो तुम लोग?" उसने थकान भरी, काँपती आवाज में कहा।

खामोशी से, दबे पाँवों वे दोनों गुण्डे थोड़ी देर पहले शिरीष के कमरे में घुसे थे। वह उस वक्त कुर्सी-मेज पर बैठा कुछ पढ़ रहा था। अचानक उन्हें देखकर वह चौंक गया था, एक छोटी-सी चीख उसके गले से निकली थी। उनमें एक काफी कम उम्र का कमसिन जवान था, दूसरे की फ्रेंच कट दाढ़ी थी। वे उसे घेरकर खड़े हो गये थे और धमकियों भरी तेज आवाज में उससे कुछ कहते रहे थे। वह चुपचाप सुनता रहा था। बाहर से बुलाये जाने की आवाज आने पर उसने 'प्लीज' के साथ उनसे मिन्नत की थी कि जो भी आया है, उसे चला जाने दें, उसके सामने कोई तमाशा नहीं होना चाहिए। उन लोगों ने उसकी बात मान ली थी, और वे तीनों भीतर के दरवाजे के पीछे छुप गये थे, साँस रोके।

"क्या फिर से बताने की जरूरत है?" उनमें से एक ने चीखती आवाज में कहा।

"देखिए, आप पढ़े-लिखे लेखक टाइप आदमी हैं। सुना है आपकी कहानियाँ भी छपती रहती हैं। हम लेखकों की बहुत इज्जत करते हैं, इसलिए शराफत से पेश आ रहे हैं।"

"हम आपसे यह नहीं कह रहे कि अभी या कल ही कमरा खाली हो जाए।" दूसरे आदमी ने कहा, "आराम से कोई दूसरा मकान देख लीजिए, हफ्ते, दस-पन्द्रह दिन में, चाहें तो एक महीना ले लीजिए। देखिए, आपके यहाँ रहने से आपकी भी बदनामी है, डॉली की भी। लोग क्या-क्या बातें करते हैं, आप जानते हैं?"

उधर अँधेरे में वह जे.ई. कुर्सी पर शॉल लपेटे बैठा था। उसकी आँखें गेट पर लगी थीं और कान पीछे के कमरे में।

"या फिर उससे अगर वाकई इश्क है तो शादी कर लो। इसमें क्या बुराई हैं? फिर आराम से रहते रहो, बिना किराये के। जितना आप अपनी नौकरी और कहानियों से कमाते होंगे, उससे ज्यादा ही कमाई होगी ब्यूटी पार्लर की। भाई साहब, आप तो...मैं आपकी जगह होता तो..." फ्रेंच कट दाढ़ीवाला हँस रहा था, कमीना।

शिरीष सिर झुकाये बिस्तर पर बैठा रहा। वे दोनों शान्ति से कमरे से बाहर चले गये। उसका दिल तेजी से धड़क रहा था और साँस तेज चल रही थी वह अपनी साँसों को स्थिर करने की कोशिश करता हुआ लेट गया। पटाखे की आवाज के साथ उसके भेजे की चर्बी में बहुत सारे विचार और खयाल धँसे थे, छर्रों की तरह, गडमड और बेतरतीब। वह उन्हें तरतीबवार लगाना, बारी-बारी सोचना चाहता था। उसके घर से एक कि. मी. दूर एक मन्दिर से शाम की घण्टियों की आवाज उसके कानों में पड़ने लगी थी, इतनी दूर से बहुत मद्धिम और मुलायम। उसने अन्दाजा लगाया, उस जे.ई. के रिटायर होने पर उसे कितना मिला होगा और ऊपर की कमाई कहाँ जमा की होगी, और इस मकान की कीमत कितनी होगी, और डॉली की उम्र कितनी।

उसकी निगाह अचानक मेज पर पेपरवेट के नीचे दबे कागज पर गयी। उसने उसे उठाकर पढ़ा। भड़ाक से उसके ऊपर पुरानी, बीती हुई बातों का एक ढेर आकर गिरा, और फिर कमरे के सन्नाटे में एक साथ बहुत सारा समय बीत गया। पुनःस्मरण के प्रयास में उसके सीने में दाहिनी तरफ एक दरार फैलने लगी, पहले पतली और धीरे-धीरे बड़ी होती हुई। उसने कागज दुबारा पढ़ा, सर्वेश्वर कल या परसों आ रहा था। उसे ध्यान आया, परसों ही तो टाउन हाल में वह कथा-सम्मेलन होनेवाला था जिसमें दिल्ली से एक बड़े उत्तर-आधुनिकतावादी व्याख्याकार को सदारत करने आना था। उस सम्मेलन का सारा इन्तजाम शिरीष के जिम्मे था, उसी की कोशिशों से वह यहाँ पर हो रहा था और हफ्ते भर से वह उसी की दौड़-भाग में लगा हुआ था, चन्दा लेना, पोस्टर, पर्चे, निमन्त्रण पत्र छपवाना वगैरह। सारी तैयारियाँ पूरी हो चुकी थीं, अब केवल यू.पी. रोडवेज की डीलक्स बस में गाजे-बाजे और धूमधाम के साथ उत्तर-आधुनिकतवादी व्याख्याकार का आना बाकी था। वह तेजी से उठा, तैयार हुआ। बाहर के अँधेरे में तेज कदमों से चलता हुआ वह सड़क के पार चला आया जहाँ एक पी सी ओ की छोटी-सी दुकान थी। उसने दुकान में बैठे आदमी को कागज पर नम्बर लिखकर पकड़ाया। लाल अंक मॉनिटर पर उभरे। आवाज आयी, इस तरफ की सभी टेलीफोन लाइनें व्यस्त हैं, कृपया थोड़ी देर बाद फोन करें। वह उत्तर-आधुनिकतावादी व्याख्याकार को कहना चाहता था कि सम्मेलन वाले दिन उसे अचानक एक बहुत जरूरी काम से बाहर जाना पड़ रहा था, वह उसमें हाजिर नहीं हो सकेगा, और कुछ और जरूरी बातें। उसने फिर नम्बर मिलाया, फिर वही आवाज आयी। कई बार नम्बर मिलाने के बाद दूसरी तरफ घण्टी बजी, बहुत देर तक बजती रही। उत्तर-आधुनिक व्याख्याकार अपने घर पर नहीं था, कहाँ गुम था, खुद जाने-दिल्ली एक विराट शहर था, जहाँ सब कुछ विराट, विशाल, विकराल था-विराट सड़कें, इमारतें, मोटरें, बसें, धूल, धुआँ, इतना शोर, इतना साहित्य, हे ईश्वर, और इतनी साहित्य-चर्चा, इतनी संस्कृति, कला, इतनी

भाषा और इतने लोग। उस अकल्पनीय रूप से विराट नगर के एक खाली, खामोश कमरे में एक घण्टी बहुत देर तक किसी खतरे या चेतावनी की घण्टी की तरह बजती रही, फिर शिरीष ने टेलीफोन रख दिया, और थके, क्लान्त कदमों से अपने कमरे में वापस आकर बिस्तर पर लेट गया। थोड़ी देर लेटे रहने, कुछ सोचते रहने के बाद उसने किताबों की ऊँची शेल्फ के सामने स्टूल खिसकाकर सबसे ऊपर के खाने से दो-तीन पुरानी, धुल सनी, फटे पन्नों वाली पुस्तकें निकालीं। दो-तीन बार बिस्तर के किनारे पर उन्हें फटकार कर उसने धूल साफ की, और फिर मेज पर बैठकर उन्हें पढ़ने की कोशिश करने लगा, पहले मन-ही-मन, फिर जोर-जोर से, जैसे खोयी हुई याददाश्त को जगाने की कोशिश कर रहा हो... जैसे इम्तहान की तैयारी में बच्चे पढ़ते हैं और समय को तेजी से बीतता देखकर भयभीत हो जाते है, जल्दी-जल्दी पलटते हैं पन्ने। उन किताबों में से एक थी अठारहवीं शताब्दी के इंग्लैण्ड के औद्योगिक क्रान्ति से पहले के ग्रामीण, खेतिहर जीवन के बारे में बहुत धीमी गति से चलनेवाला एक मोटा उपन्यास, जिसकी जिल्द गायब थी, और दूसरी मायकोव्स्की की कविताओं का एक संकलन, जिसमें वह कविता थी, जिसमें ग्रीष्म की गर्मी में धधकते सूरज को चिल्लाकर कहता है कवि, अबे लो लोफर नीचे उतर। और तीसरी, उसे आश्चर्य हुआ, कविता कहानी की किताबों के बीच वह कोई पुराना मेडिकल जनरल....शायद डॉ. आलोक श्रीवास्तव कभी भूल गया हो, उसमें इन्सान के जन्म और प्रसव-पीड़ा के बारे में कुछ लेख थे, जिनके बीच स्त्री के आन्तरिक अंगों के रेखाचित्र थे और उन्हें देखते हुए एक छटपटाती निर्वसन स्त्री का चित्र दिमाग में उभरने लगता था, जिसके कन्धों को कसकर थामे हुए कोई नर्स या दाई, और उसके भिंचे हुए दाँतों के बीच से बहती हुई एक दबी भिंची चीख...गों...गों....गों....गों....

उसकी निगाह अचानक दायीं तरफ की दीवार पर लगे दर्पण पर गयी। उसने देखा धुँधले प्रकाश में उसका चेहरा पीतवर्णी, पसीने से तरबतर था और

लग रहा था जैसे वह संसार का एकदम अकेला, बिल्कुल तन्हा प्राणी हो। वह काँपते हुए हाथों से हलकोर रहा था अपनी कई दिनों की, उलझी हुई दाढ़ी। उसे अचानक महसूस हुआ कि वह बूढ़ा हो गया था, उसके कमरे की छत कुछ नीचे झुक आयी थी, दीवारों से पलस्तर झड़ने लगा था, फिर उसके नीचे की नंगी, सूखी दीवारें चटखने लगी थीं, भरभराकर ढह जाने को तैयार.... देखते-देखते उसका कमरा खँडहर के तब्दील हो गया था जिसमें मकड़ी के जाले नीचे तक लटक रहे थे और उनके बीच अपनी कुर्सी पर बैठा वह आस्तीन से आँसू पोंछ रहा था, बुखार की तरह बढ़ती, लहू की लकीर की तरह जमती इस इच्छा के साथ कि किसी भी तरकीब से दूर से नजर आने वाली अनाच्छादित पहाड़ियों के पीछे अपने गाँव वापस पहुँच जाए... जहाँ धीमे-धीमे हिलते पेड़ थे, पहाड़ी हवाओं में फँसकर जो, और उसके सामने एक चुपचाप नदी... .उस पर बना पुराना पुल। मगर पाँच फुट सात इंच लम्बे सैंतीस साल के आदमी के रूप में नहीं जो चालीस नम्बर की बनियान पहनता था, दस साल का बच्चा बनकर, सर्दियों में जिसकी नाक बहती रहती थी, और सारा किस्सा फिर से, नये से शुरू करना...।

आदेश अवस्थी रात को सोने के लिए पलंग पर मच्छरदानी लगा रहा था कि उसे ध्यान आया, अरे, केशव तो रह ही गया। उसने टेलीफोन के पास से नम्बरों की डायरी उठायी, पन्ने पलटकर उसका नम्बर निकाला। केशव का दफ्तर या दुकान, जो चाहें कह लें, उसका प्रॉपर्टी डीलर (प्रॉपर्टी डीलर) का धन्धा जवाहर नगर में मेन चौराहे के सामने एक अधूरे बने मकान के एक कमरे में था - दफ्तर भी क्या, बस एक कुर्सी मेज, और एक टेलीफोन और दोपहर में नींद आए तो झपकी लेने के लिए बिस्तर भी। थोड़ी देर पहले बिजली चली गयी थी और वह अँधेरे में टटोलते हुए दफ्तर का ताला लगा रहा था कि टेलीफोन घनघनाने लगा था। ताला दुबारा खोलकर अँधेरे में ही उसने टेलीफोन उठाया था। उधर अवस्थी था, उसकी वह पहचानी-सी आवाज, जिसे वह कई बरसों के बाद

सुन रहा था, "पहचाना, मैं अवस्थी!" केशव ने कहा था, "यार ऐसी कमजोर नहीं है याददाश्त (झूठ बोल रहा था, उसकी याददाश्त बहुत कमजोर थी), बड़ी मुद्दत के बाद याद किया, कहाँ से बोल रहा है?" "यहाँ से, और कहाँ से।" अवस्थी ने कहा था। "सर्वेश्वर आ रहा है, दो-एक दिन में। उसकी बहन की शादी है, उसमें भाग लेने के लिए। तो उसके एकाध दिन के बाद हम कहीं पर मिलते है। सर्वेश्वर ने लिखा है कि वह सब पुराने दोस्तों से मिलना चाहेगा। मैंने आज दिनभर में सबको खबर दे दी है।" केशव खामोश रहा था, काफी देर तक कोई आवाज न सुन पाने पर अवस्थी ने कहा था, "केशव, सुन रहा है न?" तब केशव ने कहा था, "कौन सर्वेश्वर?"

"तू सर्वेश्वर को भूल गया? सर्वेश्वर... अपना पुराना दोस्त। जो..."

"वह तो मर गया कब का?"

"कैसी बात कर रहा है?"

"उसे तो मरे दस साल हो गये। वह अभी जिन्दा है?"

"....."

"अगर वह जिन्दा है तो यहाँ आने का कोई इरादा नहीं रखता, और रखता है तो यहाँ पहुँच नहीं पाएगा। कहीं रास्ते में ही...."

टेलीफोन तारों पर चढ़कर एक हाँफती-सी आवाज उसके कानों तक आयी थी, और फिर टेलीफोन तारों की अपनी, काँपती हुई, अनिष्टकर-सी आवाज। अँधेरे में अपना दफ्तर बन्द कर वह अपने घर चलने लगा था जहाँ एक खाली, सुनसान बैठक उसकी प्रतीक्षा में थी। उसकी पत्नी, बच्चे किसी शादी में शहर से बाहर गये थे। वह अँधेरे में घूरता हुआ, तेज कदमों से चल रहा था, जैसे कोई उसके पीछे-पीछे चलता हुआ, उसे धक्का दे रहा हो। वह चाहता था सीधे घर जाकर बिस्तर मे लेटकर एक कोमल लोरी या ठण्डे चुम्बनों जैसी नींद सोना (क्या पता चाहता हो सिर्फ शराब के नशे में बेसुध और स्मृतिहीन पड़ा रहना,

प्रॉपर्टी डीलरों की इच्छाओं का भी क्या भरोसा), मगर जानता था कि रात को जो नींद आएगी वह घरघराहट भरी होगी जैसे सीने में घास-फूस या रद्दी कागजों का कचरा भरा हो। वह तब तक का समय सावधानीपूर्वक खर्च करना चाहता था। वह रेलवे स्टेशन के पास उस बार की तरफ चलने लगा जहाँ पोखरियाल, एक ठेकेदार और तिवारी, एक और प्रॉपर्टी डीलर, उसके धन्धे का साथी, उसका इन्तजार कर रहे थे। तिवारी ने उस दिन एक होटल बेचा था। और पचास-साठ हजार का कमीशन कमाया था, और थोड़ी देर पहले केशव को फोन किया था कि आ जा प्यारे, आज तो...। बार में घुसते ही मक्खियों की भनभनाहट जैसे शोर ने उसे घेर लिया। पोखरियाल और तिवारी कोने की मेज पर बैठै थे वहीं से उन्होंने उसे भीतर घुसते देखा और आवाज देकर पास बुला लिया। वहाँ हल्के नीले अँधेरे में अलग-अलग मेजों पर प्रेतों की तरह लोग फुसफुसा रहे थे। कोने में टेबल लैम्प की रोशनी में काउण्टर पर एक झुका हुआ सिर पैसों का हिसाब कर रहा था। वे काफी देर पीते रहे, पीते-पीते उसकी चेतना पर धुन्ध छाने लगी, उसने आँखें बन्द कर पीछे कुर्सी पर पीठ टिका दी, जैसे नींद में हो। चाहता था शराब की नैया में कहीं दूर बहते जाना, मगर उसने किसी खन्दक में उतरते जाने जैसा महसूस किया, और तेजी से बढ़ती थकान। बीच में बहुत सारे क्षण यूँ ही बीत गये, फिर उसे महसूस हुआ कोई उसे हिलाकर जगा रहा है। उसने आँखें खोलीं। पोखरियाल और तिवारी उसके ऊपर झुके हुए थे, और तिवारी कह रहा था, "तबीयत तो ठीक है न?"

पूँजीवाद और इतिहास के नमक के बारे में वह कुछ कहना चाहता था, और पेरिस कम्यून, महान लेनिन और गोर्की, और अठारह सौ सत्तावन के आजादी के संग्राम और चेकोस्लावाकिया के बारे में, जहाँ 'लिडिस' एक गाँव था जहाँ छोटे-छोटे बच्चों के घुँघराले, सुनहरे बाल और निप्पल और नैपकिन एक म्यूजियम में प्रदर्शित थे जिन्हें फासियों ने गला घोंटकर मार डाला था। और भी बहुत कुछ जो इतिहास में गुजरा था और अब शराब-घर के घनतर अँधेरे में

दिमाग से रगड़ खाता गुजर रहा था। उसके पास इतिहास की मास्टर्स डिग्री थी जो उसने नकल या रट्टा मारकर हासिल नहीं की थी, मगर उसने कुछ भी नहीं कहा, कहता तो उसके मुँह से सब कुछ झूठ में सना हुआ-एक बहुत धीमी, कमजोर आवाज में उसने यही कहा कि मै चलता हूँ, बहुत थक गया हूँ। वहाँ से एक अँधेरी, निर्जन गली के छोटे रास्ते से वह सीधे अपने घर गया और बिस्तर पर लेटकर आँखें मूँद लीं। नींद आने से कुछ क्षण पहले उसने खिड़की के परे एक रोने की आवाज सुनी। उसने उठकर खिड़की खोलकर बाहर अँधेरे में झाँका। वहाँ कोई न था। वह खिड़की बन्द कर दुबारा लेट गया। वह आवाज फिर भी आती रही।

लोहे के तारों के गुच्छे या शरीर में खून की शिराओं की तरह बहुत सारी मोड़ों और मरोड़ों वाली वे गलियाँ एक-दूसरे में उलझी हुई थीं, जहाँ की भीड़भाड़ और शोर-शराबे के बीच आदेश अवस्थी बहुत देर से सर्वेश्वर का मकान तलाश रहा था। वह हर गली और सड़क से कई बार गुजर चुका था। गलियों में सब्जी के ठेले, मिठाइयाँ और चाय की दुकानें थीं, सड़क पर बरसात के दिनों का कीचड़ और मक्खियाँ और कचरे से कुछ तलाशते जानवर, और दुकानों के बीच इक्का-दुक्का मकान जो ताबूत के ढक्कन की तरह बन्द थे, दोपहर की नींद में गर्क, निःशब्द और एक दम एकाकी। वहाँ कोई ऐसा घर नहीं था जहाँ शादी की चहल-पहल हो या लाउडस्पीकर पर शोर। भीड़ और शोर भरी बेछोर गलियों में वह चलता रहा, बहुत देर तक। दोपहर का सूरज सरकता हुआ दूर चला गया और धीरे-धीरे झुटपुटा होने लगा।

सर्वेश्वर का मकान बहुत मुश्किल से मिला, एक लकड़ी की टाल के पीछे ठुँसे हुए मकान के एक हिस्से में। मैली काली दीवारों वाला वह एक बहुत पुराना मकान था, जहाँ नीचे एक कमरे के भारी-भरकम दरवाजे पर ताला लटक रहा था, और बरामदे के किनारे से लकड़ी की पेंचदार सीढ़ियाँ ऊपर चली गयी थीं।

हल्की धुन्ध-सा धुआँ फैला हुआ था वहाँ, पता नहीं कहाँ से आता हुआ। हिलती, काँपती सीढ़ियों पर चढ़कर वह ऊपर गया और दरवाजे पर दस्तक दी। कई बार खटखटाने के बाद भी भीतर कोई हलचल नहीं हुई। वह वापस मुड़ने वाला था कि भीतर से कुण्डी खड़कने की आवाज सुनाई दी। किसी बच्चे ने दरवाजा खोला था। वह उसे पहचानता नहीं था। वह खामोश उसे देखता रहा।

"सर्वेश्वर का घर यही है?" बच्चा कुछ न बोला, उसकी भावशून्य, एकटक आँखें उसके चेहरे पर जमी रहीं। भीतर से ठक्ठक् की आवाज के साथ सर्वेश्वर का बाप उसकी बैसाखी पर चलते हुए आया। उसने किसी कोने में स्विच ऑन किया। पीले रंग की एक मद्धिम, मरी-मरी-सी रोशनी कमरे में फैल गयी।

"आपको किससे मिलना है?" सर्वेश्वर मे पिता ने पूछा।

"सर्वेश्वर..." उसने हथेलियों से चेहरे का पसीना पोंछते हुए कहा। गुच्छा-मुच्छा दरी को छोड़कर। वह बच्चा भीतर जाकर एक फोल्डिंग कुर्सी को कमरे में खिसका लाया। आदेश कुर्सी पर बैठ गया और सर्वेश्वर का पिता सावधानी से बैसाखियाँ हटाते हुए उसके सामने चारपाई पर।

"मैं सर्वेश्वर का दोस्त हूँ" उसने कहा, "उसकी बहन की शादी है न! उसकी चिट्ठी आयी थी। वह आ चुका है?"

पीछे घर में सन्नाटा था। एक अटल, असहनीय खामोशी।

"सर्वेश्वर आया या नहीं, मैं यह पता करने आया था।"

सर्वेश्वर के पिता ने सिर हिलाया। वे बिना कुछ बात किये काफी देर तक खामोश बैठे रहे।

"मैं चलता हूँ। कल फिर पता कर लूँगा।" उसने उठते हुए कहा।

सर्वेश्वर का पिता बैठा रहा। उसे लगा जैसे उसने सुना ही नहीं। वह चुपचाप बाहर चला आया।

सर्वेश्वर उस समय गाड़ी के दूसरे दर्जे के एक खचाखच डिब्बे में यात्रियों के बीच ठुँसा हुआ बैठा था। गाड़ी उस समय बस्ती और गोण्डा के बीच कहीं थी। वह बहुत धीमी रफ्तार से चल रही थी और हर स्टेशन पर खड़ी हो जाती थी। ट्रेन में भारी पेटियों और बिस्तरों के साथ बासी, गन्धाते कपड़ों में अधिकतर देहाती लोग थे, कुछ पतलून-कमीजों में बाबूनुमा आदमी भी। डिब्बे में हर तरफ लोग ठुँसे हुए बैठे थे, नीचे के फर्श पर भी, मगर एक अजीब, आसामान्य खामोशी थी, ट्रेन की अपनी आवाज के अलावा बियाबान जैसी निःशब्दता। उसके पास एक झोला था जिसमें एक डायरी, दो-तीन किताबें, और खाने का खाली डिब्बा और कुछ कपड़े थे। उसके नुकीली हड्डियों वाले चेहरे पर कई दिनों की बढ़ी हुई दाढ़ी थी, और थकान भरी दृष्टि से सामने देखता हुआ वह कुछ कमजोर लग रहा था।

गाड़ी जब आगे आती है, मन पीछे जाता है, भगोड़े की तरह तेज रफ्तार, जैसे छूटकर कहीं जाना चाहता हो, अपने पैरों पर भागता हुआ वह कहीं नहीं रूकता, ट्रेन के रूक जाने के बाद भी। बहुत देर से गाड़ी एक छोटे-से स्टेशन पर ठहरी हुई थी। बाहर एक सुनसान प्लेटफॉर्म था, और उनके पीछे दोपहर की धूप में सूखते खेत। उनके बीच की पगडण्डी पर बहुत दूर कोई साइकिल चलता आ रहा था। स्टेशन के ठीक पीछे एक एकाकी, ध्वस्त झोंपड़ी थी, और डिब्बे में कुछ खाँसने की आवाजें थीं, बाहर की निःशब्दता में इस तरह धँसती हुई जैसे पानी में पत्थर डूबता है, बेआवाज। सर्वेश्वर की आँखें भारी और उनींदी होने लगीं, उनकी चमक बुझ गयी। शायद उसी पल एकाएक, या उससे कुछ पल आगे-पीछे, या किसी और समय, कौन जाने, उसका हौसला पस्त होने लगा था। उसने अपने झोले से एक किताब निकाली और निरख-निरखकर पढ़ने की कोशिश करने लगा। लेकिन मन नहीं लगा, उसकी आँखों के सामने सब कुछ धुँधला हो रहा था और सीने में कोई बोझ उठता आ रहा था। वह उठकर लोगों के बीच जगह बनाते हुए, डिब्बे की दीवार का सहारा लेते हुए किसी तर टायलेट

में पहुँचा और वाश बेसिन में मुँह झुकाकर खड़ा हो गया। उसके पेट से एक प्रबल वेग के साथ कुछ उठा और वाश बेसिन में उलट गया, पीले पानी जैसा कुछ और उसमें रात के खाने के साथ खाने के साथ खून के दो-चार टुकड़े।

वह लड़खड़ाते पैरों से अपनी बर्थ पर लौटा और वहाँ की सँकरी जगह में अपने को अटाते हुए किसी तरह लेट गया, छत पर आँखें गड़ाये। फिर एक झटके से ट्रेन आगे बढ़ी और उसकी आँखें मुँद गयीं।

ट्रेन आधे घण्टे के बाद फिर जंगल में रूक गयी। सर्वेश्वर की आँखें ऊपर की चढ़ गयी थीं और थरथराहट ने उस पर काबू पा लिया था। कितनी दूर तक रह सकता है दिलेराना अन्दाज, और एक आदमी, थोड़े-से लोग, कितनी जिम्मेदारी उठा सकते हैं। उसे पत्ते की तरह काँपता देखकर सब यात्री उसके ऊपर झुक आये। औरतें कुछ दूर, आदमी कुछ पास। एक चीख की आवाज, उसके पीछे किसी बच्चे की अचानक रूलाई, और फिर बहुत सारी मिली-जुली आवाजों का शोर उठा, डिब्बा अचानक जैसे चौंककर नींद से जागा हो। "इसकी हालत खराब है, इसके साथ कोई है क्या?" कहीं से आवाज आयी और फिर थोड़ी देर चुप्पी छा गयी। धीमे-धीमे सरकती गाड़ी एक छोटे-से स्टेशन में घुसी और उसके रूकने से पहले ही मजदूर जैसे नाक-नक्शवाला एक आदमी प्लेटफॉर्म पर कूदा और एक डिब्बे में पानी भरकर ले आया। दौड़ता हुआ वह वापस आया और भीड़ में घुसते हुए पानी का कटोरा उसकी तरफ बढ़ाने की कोशिश करने लगा, मगर काफी हिलाने-डुलाने के बावजूद उसकी आँखें मुँदी रहीं, वह इस समय तक बेहोश हो चुका था। जब वह उसे पिलाने की कोशिश कर रहा था, तब ट्रेन के आखिरी डिब्बे से काफी लम्बे कद का पचास की उम्र के आसपास का एक आदमी जिसकी बड़ी-बड़ी बुद्धिमान आँखें थीं, झक सफेद दाढ़ी और दिमाग से पराकाष्ठा तक पहुँचा हुआ गुस्सा, डिब्बे के डण्डों को पकड़कर धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म पर उतरा।

इस आदमी की धमनियों में जो तेज रफ्तार खून था, वह यूँ तो मिला था उसे हर व्यक्ति की तरह उसके माता-पिता से, मगर उसमें थोड़ा-सा, शायद एक छोटी परखनली जितना, मिला हुआ था मनुष्य जाति के कुछ सर्वोत्कृष्ट, सबसे शानदार और महान, तेजस्वी लोगों, पुरखों का चमकदार लहू-मानव जाति के बीच चुपके-चुपके चलता हुआ, कई कन्धे बदलकर उस तक पहुँचा था। (वह न कब्र की मिट्टी के रास्ते समुद्रों में जाकर मिलता है, न विद्युत शवदाह गृह में भाप बनकर उड़ता है। वह केवल आततायियों का मवाद मिश्रित खून होता है, जो जमीन पर बह जाता है। बाकी सब लोगों, साधारण लोगों और असाधारण, महान जनों का रक्त आगे यात्रा करता है, किसी घटिया, नस्लपरस्त आनुवंशिकी के नियमों के बाहर-कुछ का थोड़ी दूर तक, बहुत थोड़े से लोगों का बहुत दूर तक। इसी में कहीं तलाशने पर मिलेगा मूर्ख आध्यात्मिकों के इस सनातन सवाल का भी उत्तर, कि मरने के बाद देह कहाँ जाती है।) बहुत सारे मृत व्यक्तियों के शरीरों, आशाओं, सपनों, एकान्त में कहे गये शब्दों, ऊँचे-नीचे रक्तचाप और आँसुओं और खाँसियों को योगफल होता है हर व्यक्ति, और फर्क केवल इतना होता है कि कौन-से मृतक और कितने... जैसे इस व्यक्ति के थे। उनमें पैगम्बर या मसीहा या वे अति मेधावी लोग नहीं शामिल थे जो तत्त्वचिन्तन करते या ग्रन्थ बाँचते, किताबें लिखते हैं, न वे जो दूरबीनों में झाँककर अन्तरिक्ष और नक्षत्रों की गहराई, मोटाई नापते हैं- ये सब काम अपनी जगह पर बेशक जरूरी होते हैं, दरअसल बहुत जरूरी, मगर यहाँ पर जिनका जिक्र है वे कुछ दूसरी ही तरह के लोग थे, जो दूसरे मुल्कों मे मौत या बीमारी से लड़ने पहुँच जाते हैं जैसे डॉ. कोटनीस, या जो किसी बीमारी का इलाज ढूँढ़ने को पागल कुत्ते की लार सिरिंज से अपनी नसों में उतारने का चरम दुस्साहस कर सकते हैं, जैसे डॉ. लुईस पाश्चर, या जो रेडियम के विकिरण से अपने को छलनी कर लेते हैं, डॉ. मेरी क्यूरी और उनके पति की तरह, और दुत्कार कर भगा देते हैं, मल्टीनेशनल

कम्पनी के मोटे मैनेजर को जो माल कमाने की सम्भावनाएँ सूँघता हुआ उनके पास करेंसी नोट और व्यापारिक प्रस्ताव लेकर पहुँचता है, यह कहकर कि उनका अविष्कार पूरी मानव जाति के लिए है, बिल्कुल मुफ्त-और इसी तरह के बहुत, बहुत सारे लोग।

उदाहरण की तरह ऊपर बताये गये लोगों की तरह वह व्यक्ति भी पेशे से डॉक्टर था, मगर वैज्ञानिक नहीं, साथ ही वह एक बेहद गुस्सैल आदमी था, बेपनाह गुस्सा, और जीवन-भर साथी डॉक्टरों की चेतावनी सुनता आया था कि वे अपने क्रोध पर काबू पाए, चाहे इसके लिए ध्यान किया करे या शवासन, वरना किसी दिन ब्रेनहेमरेज होगा, चलते-चलते वह लुढ़क जाएगा और उसका चश्मा दूसरी तरफ। वह थोड़ी देर पहले साथ में सफर कर रहे एक दुकानदार से झगड़ पड़ा था कि उसने गत्ते के बहुत सारे डिब्बे इस तरह रास्ते के बीच रख दिये थे कि लोगों का आना-जाना असम्भव हो गया था। वह गार्ड से झगड़ने उतरा था इस बात पर, कि उस कम्पार्टमेण्ट में पानी नहीं आ रहा था और टट्टी-पेशाब रोके हुए बच्चे बुरी तरह चीख रहे थे। गार्ड साहब अपने डिब्बे में नजर नहीं आये तो वह स्टेशन मास्टर से मिलने के लिए उसके कमरे की तरफ आने लगा। तभी उसने सर्वेश्वर के डिब्बे के पास भीड़ देखी और भीतर घुसकर एक ही क्षण मे स्थिति को समझ लिया। वह कम्पार्टमेण्ट में ठुँसी हुई भीड़ को डाँट-फटकार कर लोगों को हटाता हुआ उसके पास पहुँचा और उसकी कलाई उठाकर धड़कनों का हिसाब देखने लगा, दूसरे हाथ से उसने उसकी खाल को चुटकी में पकड़कर खींचा। सर्वेश्वर की साँसें धौंकनी की तरह तेज चल रही थीं।

"कौन है इसके साथ, इसकी तबीयत तो बहुत खराब है। इसे लगता है लू लगी है, डीहाइड्रेशन...।" कहीं से कोई आवाज नहीं आयी। उसने कहा, "स्टेशन मास्टर को बुलवाना होगा, यहाँ रेलवे का डॉक्टर होगा शायद।" उसने पास बैठे एक धूप का चश्मा लगाये नौजवान को 'ए पतलून मास्टर' कहते हुए हाथ

पकड़कर खड़ा किया और कहा कि वह दौड़कर स्टेशन मास्टर को बुलाकर लाए और कुछ और लोगों को काफी तेज आवाज में डांटकर दूर कर दिया। एक आदमी की मदद से उसने उसके तपते हुए शरीर को खिड़की के पास खिसका दिया और जूते खोलकर नीचे रख दिये।

सफेद वर्दी में उस नौजवान के साथ स्टेशन मास्टर थोड़ी देर में आया।

"इस आदमी को उतारना होगा।" उसने स्टेशन मास्टर से कहा, "यह आगे सफर नहीं कर सकता।"

"क्यों, क्या हुआ?"

"इसकी तबीयत काफी खराब है। बेहोश हो गया है।"

"जनाब, यह तो छोटा-सा स्टेशन है," स्टेशन मास्टर ने कहा, "आगे बाराबंकी या लखनऊ में ढंग का..."

"नहीं, वहाँ तक पहुँचते-पहुँचते रात हो जाएगी," उसने सख्ती से कहा, "यहाँ रेलवे का अस्पताल..."

"यहाँ कोई अस्पताल नहीं है। यह छोटा-सा स्टेशन है।" स्टेशन मास्टर ने कहा और वापस जाने लगा। उस आदमी ने उसकी सफेद वर्दी को पकड़कर पीछे खींचा।

"मि. स्टेशन मास्टर..." उस आदमी का गुस्सा भड़क उठा था, "यहाँ लोग क्या कभी बीमार नहीं पड़ते? क्या करते हैं फिर वो?"

"देखिए, यहाँ एक छोटा-सा प्राइमरी हेल्थ सेण्टर है, जहाँ डॉक्टर हफ्ते में एक दिन आता है। आज तो...."

"कोई बात नहीं, मैं डॉक्टर हूँ। वहाँ कुछ दवाइयाँ तो होंगी। फौरन इसे उतरवाइए। कोई स्ट्रेचर, कुछ है.... दो एक आदमी बुलवाइए....देख क्या रहे हैं?" वह गुस्से में भर्रायी और तीखी आवाज में चीख रहा था। गाड़ी खड़ी रही।

इंजन बार-बार सीटी मार रह था। सब डिब्बों की खिड़कियों से बाहर सिर झाँक रहे थे।

"देखिए, वह हैल्थ सेण्टर तो इस समय बन्द होगा। उसकी चाभी..." स्टेशन मास्टर अब कुछ सहम गया था।

चाभी ढुँढ़वाइए, फौरन। और न मिले तो ताला तुड़वा दीजिए। देखिए, इस आदमी को अगर... "वह अब हकलाने लगा था। उसकी भूरी तरल आँखें भयानक लग रही थीं, और उसके चेहरे से लग रहा था कि कुछ देर और स्टेशन मास्टर बिना कुछ किये खड़ा रहेगा तो वह उसे थप्पड़ मार देगा। स्टेशन मास्टर अपने कमरे तक जाकर दो खलासियों को बुलाकर लाया। तेज-तेज कदमों से अपने डिब्बे तक जाकर डॉक्टर ने अपना सामान बाहर निकाल लिया। दो यात्रियों ने बेहोश सर्वेश्वर को स्ट्रेचर पर लिटाया। उसका झोला उसके सिर के पास रख दिया गया। इंजन ने फिर सीटी दी। गाड़ी हौले से खिसकने लगी।

स्टेशन मास्टर आगे-आगे चल रहा था, और उसके पीछे-पीछे दोपहर के भभकते सूरज के नीचे डॉक्टर स्ट्रेचर के साथ-साथ और पीछे एक कुली जिसने उसका समान उठा रखा था। प्लेटफॉर्म पार कर कुछ सीढ़ियाँ उतरने के बाद रेलवे के दो-चार मकानों के बीच वह छोटा-सा अस्पताल था। वह कोई पुरानी, टूटी-फूटी, भग्न, जर्जर जगह थी जैस ध्वंसावशेष हो उल्कापात के बाद का, या कोई कालातीती नगर उत्खनन में जमीन से निकला हुआ, सदियों पुरानी अजीब आबोहवा, और उस जमाने के लोगों की हड्डियों समेत। दो-एक मकानों के निवासियों ने खिड़कियों से देखा, और उत्सुकतावश धीरे-धीरे पास चले आये। अपनी हाँफती साँसों को सँभालने के लिए डॉक्टर एक क्षण ठहर गया, और तब उसने उनके चेहरों की तरफ देखा जो उसे महसूस हुए ममियों की मानिन्द उदासीन, अपलक भावशून्य-और तब अचानक उसका दिल जोर-जोर से धड़कने लगा। वह पहले ही जान लेता था, उसमें महसूसने की जैसे कोई

अतीन्द्रिय ताकत थी। स्टेशन मास्टर ने जेब से चाभी निकालकर कमरा खोला। भीतर के धूल, अँधेरे और ईथर की एक बासी गन्ध के बीच दोनों खलासियों ने सर्वेश्वर को एक ऊँची, लम्बी मेज पर लिटा दिया। डॉक्टर ने उसकी कलाई उठायी, वह बर्फ की तरह ठण्डी थी। एक रूई के रेशे को वह उसकी नाक के पास लाया। फिर वह जल्दी-जल्दी एक बदहवास तरीके से उसके सीने को मलने-दबाने लगा, काफी देर तक। फिर उसने अपनी चेष्टा छोड़ दी और हताशा में मेज पर एक मुक्का मारा, और भीड़ के बीच से होता हुआ तेजी से दूर जाने लगा, बाकी सब लोगों से अपना चेहरा छुपाने की कोशिश करते हुए, किसी एकान्त जगह की तलाश में। उसे अब बेहद गुस्सा था खुदा पर।

शिरीष शर्मा को सुबह ध्यान आया था कि खास करीबी लोगों के लिए शराब का इन्तजाम करने का उसे ध्यान ही नहीं रहा और शादी की व्यस्तता में पाँच मिनट निकालकर उसने पी सी ओ से गुरविन्दर को फोन किया था, और यह जिम्मेदारी उसी पर डाल दी थी। गुरविन्दर ने बैंक की एक पार्टी, आर्मी से रिटायर एक सिपाही को उसके घर से स्कूटर के पीछे बिठाया था, और उसके साथ आर्मी कैण्टीन जाकर चार बोतलों का इन्तजाम किया था। शाम को स्कूटर की डिक्की में बोतलों समेत वक्त से काफी पहले वह वहाँ पहुँच गया था, जहाँ उसका सारा मूड खराब हो गया था यह देखकर कि बारात शिरीष की कालोनी के किनारे के मन्दिर में सज रही थी। यह एक उल्टी बारात थी, घूमते-फिरते शिरीष के घर तक वापस आनी थी। वह मन्दिर में भी नहीं गया, बाहर से ही कानों के पर्दे फाड़ देने वाला भयानक शोरगुल सुनता रहा। भीड़ में उसे दूर से आदेश अवस्थी नजर आया तो उसने उसे इशारा कर अपने पास बुलाया और कहा, इस आदमी की अक्ल देखी, शादी के लिए उसे यही जगह मिली, अब पी लो मन्दिर में बैठकर। आदेश अवस्थी ने उसे दिलासा देते हुए कहा, "घबरा मत यार, अभी कुछ

इन्तजाम करता हूँ।" वे वहाँ से एक कि.मी. दूर शिरीष के रंग-बिरंगी रोशनियों से जगमगाते घर में वापस गये, जहाँ उसने भीड़ के बीच सफारी सूट के साथ गुलाबी साफा पहने से अन्दर-बाहर जाते जे.ई. को तलाशा और अंकल जी कहकर एक तरफ से ले गया। पता चला कि शिरीष के पीछे वाले कमरे में गाँव से आये उसके माता-पिता और रिश्तेदारों का सामान बन्द था और उसकी चाभी उन्हीं के पास थी। बहरहाल, फिर भी समाधान निकल आया, कोठी के आगे वाले हिस्से में जो ब्यूटी पार्लर था, वह किस काम के लिए था, जिसकी चाभी जे.ई ने चुपके से उसे यह कहते हुए थमायी कि प्लीज शोर न हो, देखिए घर में लेड़ीज हैं। थोड़ी देर के बाद एक छोटी-सी कोलाहल करती भीड़ में सारे लोग दुकान का शटर आधा उठाकर भीतर लिपस्टिक, नेलपालिशों और तमाम रंग-रोगनों की गन्ध के बीच वहाँ पड़ी हुई बेंच पर जम गये, एक आदमी ने अपने लिए शीशे के समाने की नाईनुमा कुर्सी हथियायी। लाउडस्पीकर दुकान के ठीक ऊपर लगा था, और फिल्मी गानों का इतना शोर हो रहा था कि सब लोगों को चिल्लाकर बातें करनी पड़ रही थीं। केशव कुछ देर से पहुँचा था, उसके पहुँचते ही दर्जन-भर गिलास उसके स्वागत में उठे थे। थोड़ी-सी जगह में वे सब ठुँसकर, एक दूसरे से चिपके हुए बैठे थे। केशव के लिए खिसककर जगह बनायी गयी और गुरविन्दर सिंह ने बैगपाइपर की बोतल से उसके लिए एक गिलास में डाली, तब उसने मना करते हुए कहा, नहीं, मैं नहीं लूँगा, मैंने छोड़ रखी है। सब जानते थे कि वह झूठ बोल रहा है, और जबरदस्ती उसके हाथ मे गिलास थमा दिया गया।

आदेश अवस्थी ने अपने कोने की जगह से केशव से चिल्लाकर कहा कि वह कई महीनों से मिलना चाहता था, मगर संयोग नहीं बन रहा था, उसे कुछ जरूरी बात करनी थी। घोष और अवस्थी ने अपनी जगहों की अदला-बदली की, और अवस्थी केशव से लगभग चिपककर बैठ गया। लाउडस्पीकर के कान

फाड़ते शोर में उसने कहा कि वह यह जानना चाहता था कि केशव को पहले से कैसे पता चल गया था कि सर्वेश्वर...। क्या उसके पास भविष्य को देख लेने की शक्ति थी। केशव को कुछ सुनाई नहीं दिया। आदेश ने उसके कानों के पास चीखते हुए कहा कि क्या उसके पास आनेवाली घटनाओं को जान-बूझ लेने की कोई सिद्धि थी, पहले से वह कैसे जानता था कि सर्वेश्वर...सफर के दौरान...। केशव बहुत मुश्किल से उसकी बात समझ पाया, और फिर उसने उसके कानों में कहा कि वह तो बस ऐसे ही कह दिया था, उसका कोई मतलब नहीं था। आदेश अवस्थी ने कहा, "जोर से, मुझे कुछ सुनाई नहीं दे रहा।" केशव उसके कानों के पास चिल्लाया, "बस ऐसे ही कह दिया था, उसके पीछे कोई विचार या तर्क नहीं था। जिस तरह हजारों, बिना सोचे-विचारे बातें करता है हर व्यक्ति, बस वैसे ही...।" अवस्थी को फिर भी कुछ समझ में नहीं आया तो उसने पास से गुजरते किसी लड़के को चिल्लाकर कहा, बन्द करो यार यह शोर, मगर न उस लड़के ने सुना न शोर बन्द हुआ। आदेश अवस्थी ने फिर पूछा, क्या कह रहा था। केशव ने फिर कहा, इस बार एक थकी-सी आवाज में, कि उसने बस यूँ ही कह दिया था, इसका मतलब नहीं कि वह पहले से जानता था या उसके पास कोई ताकत थी, बाद की घटनाओं को पहले देख लेने की। ऐसा कुछ भी नहीं था। आदेश कुछ कहना चाहता था कि अचानक बिजली चली गयी और घुप अन्धकार और सन्नाटा छा गया। उस खामोश अँधेरे में किसी प्रेत की तरह केशव की ठण्डी, डरावनी आवाज सुनाई दी कि वैसे यह जान लेने के लिए न भविष्यवक्ता की सिद्धि चाहिए थी, न आइन्स्टीन का दिमाग, वह विचारों और सपनों की विदाई का वक्त था, और सब विचारवान, स्वप्नलीन व्यक्तियों के एक-एक चिरन्तन वर्तमान, सर्वदा एक-सी भीड़-बाजारों में-और सूर्य आकाश के बीचोंबीच स्थिर हो जाएगा, और दुनिया की सारी घड़ियाँ रूक जाएँगी। तब तक जेनरेटर चालू कर दिया गया था ब्यूटी पार्लर के बिल्कुल पास रखा था। झटके के साथ रोशनी और शोर वापस आये, और दीवार पर लगे बड़े-बड़े

आईनों में उनके भूतों जैसे अक्स, जिनके बीच वहाँ मौजूद किसी ने, जो केशव को नहीं जानता था, पड़ोस में बैठे घोष से पूछा कि ये कौन साहब हैं। घोष ने उसे कहा कि वह केशव है, उसके बचपन का दोस्त। उस आदमी ने फिर पूछा कि काम-धन्धा क्या करते हैं, जिस पर घोष ने बताया कि वह नामी प्रॉपर्टी डीलर है, कभी कोई जमीन, मकान, हवेली, खेत, होटल, कोई सिनेमाघर, अस्पताल, कब्रिस्तान, मीनार जितनी ऊँची बिल्डिंग या मीनार, या मकबरा, कुछ भी खरीदना, बेचना हो तो....

(पहल, 1998)

✷ ——————— ✷

योगेन्द्र आहूजा

कथाकार योगेन्द्र आहूजा का जन्म 11 दिसम्बर 1959 को बदायूं उत्तर प्रदेश में हुआ। योगेन्द्र ने कम ही कहानियां लिखी हैं लेकिन जितनी लिखीं काफी ठोस। अपनी कहानियों में इन्होंने अपने समय के सच को बारीकी से पकड़ा है और उस पर गहराई से विचार किया है। कहानियाँ थोड़ी जटिल हैं लेकिन जटिलता यथार्थ को पकड़ने की कोशिश भी करती हैं। योगेन्द्र ने अपनी कहानियां में शिल्प में बहुत कुछ नया दिया और उसे अर्थवान बनाया। अभी तक में मात्र एक कहानी संग्रह 'अंधेरे में हंसी' प्रकाशित है। कई पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं। 'गलत' कहानी के लिए 1999 का कथा पुरस्कार। वर्ष 2003 का 'परिवेश सम्मान'। 'स्त्री विमर्श' कहानी पर वर्ष 2007 का रमाकांत स्मृति कहानी पुरस्कार। वर्ष 2008 का विजय वर्मा कथा सम्मान।

सम्पर्क :- 11/63, सैक्टर-3, राजेन्द्र नगर,
साहिबाबाद, उत्तर प्रदेश
मो. - 9899398693

सिफैलोटस

रघुनन्दन त्रिवेदी

(यह एक विषैला, मांसभक्षी पौधा है जिसमें एक ढक्कन-सा होता है जो वर्षा के पानी को रोकता है ताकि वह पानी उसके विष को हल्का न कर दे)

खाली बरस

मोहल्ले में इतने घर थे कि कुछ न कुछ होता ही रहता था। कभी कहीं ब्याह-सगाई का धूम-धड़ाका तो भी कहीं मौत का मातम। शायद ही कोई बरस था जो घटनाओं के लिहाज से खाली गया हो। और कुछ नहीं तो एक रसोई में जीमनेवाल भाई ही आपस में झगड़कर अलग हो जाते और मोहल्लेवालों को बातचीत के लिए विषय मिल जाता। अकेले दिवाकर के यहाँ मेरे देखते-देखते कितना-कुछ हुआ! दिवाकर के बड़े भैया डॉक्टर बने। उनकी शादी हुई। उन्होंने शंकर नगर में बंगला बनवाया। अपनी माँ और बाबू के साथ दिवाकर वहाँ रहने गया और छह-सात महीने बाद वापस लौट आया।

परन्तु यह कैसा घर था हमारा कि यहाँ कुछ होता ही नहीं था! न शरद भैया का ब्याह, न तनु दी की सगाई और न किसी के जन्म-दिन का कोई उत्सव ही। ये तो खैर बड़ी घटनाएँ थीं मुझे तो कोई छोटी-सी घटना भी याद नहीं जो उन बरसों मे हमारे यहाँ हुई हो। रोज एक ही तरीके से जागना, एक ही तरीके से सोना। और जीवन का यह ढर्रा इतना नियमित, इतना व्यवस्थित था कि लगता ही नहीं था कि यह कोई घर है जिसमें एक नहीं, हम पाँच जीवित प्राणी रहते हैं।